॥ श्रीहरिः ॥

1876

एक महापुरुषके अनुभवकी बातें

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
के प्रवचनोंसे संकलित

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

प्रायः मनुष्य अपना समय धन कमानेमें खर्च कर रहे हैं। परिवारके पोषणको ही विशेष महत्त्व देते हैं, इन कामोंमें पाप करते हुए भी नहीं हिचकते। मनुष्य-शरीर पाकर भी हमलोग अपना पतन कर रहे हैं, इतने पर भी कोई हमें मनुष्य कहे, यह उचित नहीं है। प्रत्यक्षमें आत्माका कल्याण हो, ऐसे काममें समय न लगाकर जो अनावश्यक कामोंमें समय बिताते हैं, दिन-रात पाप करते हैं, वे गड्ढा खोदकर मर रहे हैं, उनको धिक्कार है—ये विचार हैं उन महापुरुषके, जिनका हृदय लोगोंके कल्याणके लिये तड़पता था। उनका एक ही लक्ष्य था कि मनुष्य चेतन है, यदि यह अपनी पूरी शक्ति लगा दे तो क्षण-भरमें भगवत्प्राप्ति करके जन्म-मरणके चक्रसे छूटकर परम आनन्द और प्रतिक्षण वर्धमान प्रेमकी प्राप्ति तक कर सकता है।

जिन महापुरुषके ये भाव रहे, उनका नाम है—श्रीजयदयाल गोयन्दका। उन्होंने मनुष्योंके कल्याणके लिये गीताप्रेसकी स्थापना की, गीताभवन, स्वर्गाश्रममें प्रतिवर्ष लगभग ३-४ महीने सत्संगकी व्यवस्था की, जहाँ कोई भी मनुष्य सत्संग सुनकर उन बातोंको अपने जीवनमें लाकर अपना शीघ्र कल्याण कर ले। वहाँपर वटवृक्षके सात्त्विक वातावरणमें दिये गये प्रवचनोंको किसी सज्जनने लिख लिया था। प्रायः उन्हीं प्रवचनोंको इस पुस्तकमें प्रकाशित किया गया है।

उनका मानना था कि मनुष्यमें इतनी शक्ति है कि वह भगवान्‌से जीवोंके कल्याण-प्राप्तिका अधिकार प्राप्त कर सकता है। यह बात केवल कहने, लिखनेकी नहीं है—उन महापुरुषने ऐसा अधिकार भगवान्‌से प्राप्त किया। उनके सत्संगमें आनेवाले लोगोंका उनके दर्शन एवं सत्संगसे कल्याण हो जाता था। ऐसे महापुरुषके अनुभवकी बातें, जो कि स्वर्ण अक्षरोंमें लिखने योग्य हैं तथा अपने जीवनमें उतारने योग्य हैं, उन बातोंका यहाँ संकलन हुआ है।

पाठकोंसे सविनय प्रार्थना है कि इन प्रवचनोंको ध्यानपूर्वक स्वयं पढ़ें, काममें लानेकी चेष्टा करें ताकि हमलोगोंका मनुष्य-जीवन पाना सफल हो जाय। उन महापुरुषका प्रयास एवं संकल्प हमारे साथ है।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरिः ॥

साधकोंके लिये बहुत ही महत्त्वकी बातें

इतने दिनोंमें बातें तो बहुत ही कही गयीं, शेषमें ऋषिकेशके इस सत्रके अन्तिम दिन उनमेंसे ये दो बातें प्रधान बतायी गयी थीं—

१. यावन्मात्र जीवोंकी सेवा करनी और उनको सुख पहुँचाना चाहिये।

२. परमात्माको हर समय याद रखना चाहिये।

दोनोंमेंसे एक बातको धारण करनेसे सब बातें स्वतः ही आ जायँगी।

वैराग्यवान् पुरुषोंका संग करना चाहिये। हर समय उद्यमशील होना चाहिये। पाँच मिनट भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये। समय मूल्यवान्से मूल्यवान् कार्यमें बिताना चाहिये। व्यर्थ बात करनेका अवकाश ही नहीं रहे, समय परमार्थके काममें बितावें। जिस काममें न स्वार्थ हो, न परमार्थ हो—ऐसे कामके तो निकट ही नहीं जायँ।

मनुष्यको तीन प्रकारकी कमायी करनी चाहिये—

(१) मनसे भजन-ध्यान।

(२) वाणीके द्वारा सत्य वचन, प्रिय वचन और नाम-जप।

(३) शरीरके द्वारा परोपकार।

ये बातें खूब कामकी हैं। जो काममें लाये उसकी आत्माका शीघ्र ही उद्धार हो जाय। यह शास्त्रोंका निचोड़ है, सब बातोंका सार है।

प्रवचन तिथि—ज्येष्ठ कृष्ण १०, संवत् १९८९ सन् १९३२, सायंकाल वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

मनुष्यको सहनशील बनना चाहिये। भारी-से-भारी आपत्तियोंको हर्षके साथ सहना चाहिये। संकट सहनेसे मनुष्य धैर्यवान् होता है।

कल एक बात बतायी थी कि समय किस तरह बिताना चाहिये—

१. इस (ऋषिकेशके) दृश्यको याद कर लें और भगवान्से कहें 'हे प्रभु! हे दीनबन्धु!! आपकी प्रेम-भक्तिमें इस तरह समय बितानेके दिन फिर कब आवेंगे?'

२. सत्संगमें सुनी हुई बातों, गीता इत्यादिकोंका मनन, निदिध्यासन करना चाहिये एवं उनमें मन लगाकर समय बिताना चाहिये।

जिनके पास सत्संगकी लिखी हुई बातें हों, उनके अनुसार मनन करें, एकान्तमें चिन्तन करें, फिर उन बातोंको काममें लावें। उन बातोंको सब प्रकारसे समझ लें और काममें लानेवाली नहीं हो, वह छोड़ दें। युक्तिसंगत जँचें, उनको काममें लानेके लिये कटिबद्ध हो जायँ।

इन सब बातोंका प्रत्यक्ष फल मिलेगा, परमात्माका दर्शन होगा और उनकी प्राप्ति होगी। जिनको आज परमात्मा कोसों दूर दीखते हैं, उन्हीं पुरुषोंको वह परमेश्वर रोम-रोममें, पत्ते-पत्तेमें दर्शन देगा। संसार दुःखमयके बदले आनन्दमय हो जायगा। भगवत्-स्वरूपमें निष्ठावाली परम शान्ति प्राप्त होगी, चारों ओर शान्ति-ही-शान्ति होगी।

समयकी अमोलकताको जाननेके साथ ही वैराग्य हो जायगा। देवताओंके समयका इतना मूल्य नहीं है, जितना मनुष्यके समयका मूल्य है। ऐसा साधन प्राप्त होनेपर भी जो मुक्तिका

साधन न करे, उसको धिक्कार है।

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

(रा० च० मा०, उत्तरकाण्ड, दोहा ४३)

भावनाके अनुसार फल—किसीको भोजन करते समय निम्न भाव हो सकते हैं—(१) परमेश्वर-बुद्धि। (२) महात्मा-बुद्धि। (३) कुटुम्बी-बुद्धि। (४) बेगार-बुद्धि। जो स्त्री सबको परमेश्वर-बुद्धिसे भोजन कराती है उसे परमात्माको ही भोजन करानेका फल होगा। सकामभावसे भोजन करानेपर स्वर्गकी प्राप्ति होगी। पंक्तिभेद करनेपर नरक होता है (भोजन करवाते समय भोजन सामग्रीमें भेदभाव रखना पंक्तिभेद कहलाता है)। भावनाके अनुसार ही फल होता है।

मनुष्यका जन्म पाकर भलाई लेकर ही जाय, बुराई लेकर नहीं जाय। अपने साथ बुराई करनेवालोंकी भी भलाई ही करे। अपकार करनेवालोंके साथ उपकार करना चाहिये—इससे बढ़कर संसारमें ऊँचा दर्जा नहीं है। वह मनुष्य रूपमें साक्षात् नारायण ही है। स्त्री है तो साक्षात् लक्ष्मी ही है। उत्तम-से-उत्तम पुरुष वही है, जो भलाई करके मनमें अभिमान न लावे, वह भगवद्-रूप ही है।

सबसे बढ़कर बात यह है कि समयको उत्तरोत्तर मूल्यवान् बनाना चाहिये। जो समयका मूल्य जान गया, उसका कल्याण तो हुआ ही पड़ा है।

परमात्माकी प्राप्ति मनुष्य जन्ममें एक क्षणमें हो सकती है। जिस कालमें परमात्मा मिलें, वह क्षण कैसा है? वह दशा अभी हो जाय तो परमात्मा अभी मिल जायँ। इसको वही पुरुष जानता

है, जिनको परमात्माके दर्शन होते हैं। वह क्षण हठात् भी आ सकता है, वह क्षण समयपर तो आता ही है। किसी क्षण नाम उच्चारण करते-करते वह प्रेम जाग्रत् हो जाय तो उसको उसी क्षण परमात्मा मिल जायँ। वह प्रेम उसकी दयासे आता है। उसके लिये रोना चाहिये, उससे प्रार्थना करनी चाहिये। खयाल करो, परमात्माकी कितनी दया है! परमात्माकी ओर वृत्ति जानी—यह परमात्माकी कितनी दया है! अध्यात्म-शास्त्र प्रचारवाली जातिमें जन्म होना—यह परमात्माकी कितनी भारी दया है! यहाँ भागीरथीके किनारे आना हुआ—यह भी परमात्माकी कितनी दया हुई!

गंगातट, वटवृक्ष, भगवत्-चर्चा और यह गंगाजीकी रेणुका—जो मुँह और नासिकाके द्वारा पेटमें जाकर बाहर-भीतरसे रोम-रोमको पवित्र करती है। गंगाजीका जल बाहर-भीतर रोम-रोमको पवित्र कर रहा है। ऐसे देशमें आकर वैराग्य न हो तो फिर कब होगा? इससे बढ़कर ईश्वरकी क्या दया होगी? इससे बढ़कर क्या भाग्योदय होगा? अगर परमात्माकी प्राप्ति न हो तो फिर क्या कहा जाय?

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

(रा० च० मा०, उत्तरकाण्ड, दोहा ४४)

यह दोहा रामचन्द्रजीके समयका है। उस समय अयोध्या तीर्थभूमि थी। यह गंगाजी अयोध्यासे भी पहलेका तीर्थ है। उस समय साक्षात् भगवान् थे—इस समय भगवान्का गुणानुवाद है। कलियुगमें भगवान्से भी बढ़कर भगवान्का गुणानुवाद तारनेवाला है।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

(रा० च० मा०, उत्तरकाण्ड, दोहा १०३ क)

उस समय ध्यानसे कल्याण होता था, इस समय भगवान्‌के नामसे कल्याण होता है।

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

(श्रीमद्भागवत १२। ३। ५२)

सत्ययुगमें भगवान्‌का ध्यान करनेसे, त्रेतामें बड़े-बड़े यज्ञोंके द्वारा उनकी आराधना करनेसे और द्वापरमें विधिपूर्वक उनकी पूजा-सेवासे जो फल मिलता है, वह कलियुगमें केवल भगवन्नामका कीर्तन करनेसे ही प्राप्त हो जाता है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

कलियुगमें केवल हरिका नाम ही सार है। मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, कलियुगमें हरिनामको छोड़कर दूसरी गति नहीं है, नहीं है, नहीं है।

इसीलिये तुलसीदासजी कहते हैं—

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा॥

सत्‌युगमें भगवान् नृसिंहका अवतार था और कलियुगमें नाम साक्षात् अवतार है। नामकी महिमा सदा ही है, पर कलियुगमें नाम साक्षात् राजा है, साक्षात् नृसिंह भगवान्‌का अवतार है। नामको जपनेवाले प्रह्लादके समान हैं। हिरण्यकशिपु स्वयं कलियुग है। भगवान्‌के भजनसे वही काम सिद्ध होगा।

ऐसा अवसर पाकर उद्धार न हो तो क्या समझा जाय? नामजपके साथ-साथ भगवान्‌का ध्यान भी हो तो भगवान्‌से वार्ता भी चले। फिर सब विघ्नोंका नाश होकर परमात्माकी प्राप्ति हुई ही पड़ी है। बस! ध्यानसे बेड़ा पार है।

इसमें समयका नियम नहीं, एक क्षणके स्मरणसे भगवान् मिल जायँ। एक श्वासके बदलेमें त्रिलोकीके राज्यका मूल्य भी नहीं है। एक क्षणमें भगवान् मिल सकते हैं, उस समयका मूल्य क्या कहा जाय! शास्त्रोंमें समयका मूल्य भगवान्‌की प्राप्तिसे भी बढ़कर बताया है, वहाँतक अपनी दृष्टि पहुँचती नहीं। जो रत्नकी बिक्री कौड़ियोंके बदले करता है, वह समयकी कीमत क्या जाने? समय तो रत्न है। कौड़ियोंके बदले बेचना—यानी भोगोंके द्वारा रस लेना ही समय रूपी रत्नको कौड़ियोंके बदले बेचना है। मनुष्यको परमात्माकी प्राप्ति एक क्षणमें हो सकती है।

इससे भी बढ़कर सत्संगकी महिमा गायी गयी है, सत्संगसे एक क्षणमें नारद मुनिने दस हजारकी मुक्ति करवा दी। तब सत्संगका मूल्य कितना हुआ! जिसकी कोई तुलना ही नहीं की जा सकती है!

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

(रा० च० मा०, सुन्दरकाण्ड, दोहा ४)

सत्संगका इतना महत्त्व है, यह हमलोगोंने कभी जाना नहीं, सनकादि जानते हैं। नारदके उपदेशसे क्षण मात्रमें हजारोंका उद्धार हो जाता था। दक्ष प्रजापतिने प्रजाकी वृद्धिके लिये दस हजार पुत्र उत्पन्न किये थे, वे सब नारदके उपदेशसे तप करने चले गये। जब वे तप करके तैयार हो गये, तब

नारद पहुँचे और उनसे बोले—तुम्हारे पिताने तुमको संसार फैलानेके लिये उत्पन्न किया है। तुम लोग किनारे लगी नौकाको डुबा मत देना।

बस! उनकी आँखें खुल गयीं। वे सब-के-सब महात्मा, जीवन्मुक्त हो गये। दक्षने फिर दस हजार पुत्र उत्पन्न किये, उनकी भी वही दशा हुई। तब नारदकी ऐसी करतूत देखकर दक्षने उनको शाप दिया—हे नारद! तू दो घड़ीसे अधिक कहीं नहीं ठहर सकेगा।

नारदने कहा—दो घड़ी तो बहुत है। दो घड़ीमें तो बहुतोंका उद्धार हो सकता है।

नारदकी ऐसी महिमा है कि ब्रह्मा और शिव भी दौड़-दौड़कर भगवान्‌के गुणानुवाद उनसे सुनते हैं। सनकादि तो समाधि छोड़कर सुनते हैं। सत्संगमें उस तरहका श्रद्धा और प्रेम हमलोगोंका नहीं है।

परमात्मामें श्रद्धा और प्रेम होनेसे और उनके गुणानुवाद सुननेसे क्षण-क्षणमें रोमाञ्च और नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगती है। भगवान्‌का नाम कानोंमें सुनायी देते ही आनन्दकी लहरें आने लग जाती हैं। भगवान्‌के चिन्तनसे, नाम-कीर्तनसे और गुणानुवादसे अद्‌भुत आनन्द होने लग जाता है।

इस मनुष्य-जीवनका मूल्य भगवत्-प्राप्ति है, फिर पारसका तो मूल्य ही क्या है?

एक विरक्त महात्माके एक भोला मूर्ख शिष्य था। वह भजन-ध्यान तो करता था, पर मूर्खताके कारण लोगोंको पुत्र, धन इत्यादिके लिये आशीर्वाद दे देता था। गुरुने उससे कहा—'मूर्ख! तू यह क्या करता है? तेरी ऐसी आदत कैसे पड़ गयी?'

शिष्यने कहा—ये लोग अन्न-वस्त्र इत्यादिकी सेवा करते हैं। आशीर्वाद न देनेसे फिर क्यों करेंगे? तब गुरुने उसको एक पत्थर लाकर दिया और कहा—इसकी कीमत बाजारमें जाकर करा ला, परन्तु इसे किसी भी भावमें बेचना नहीं है। शिष्य बाजारमें गया। उस पत्थरका मूल्य मालीने तीन पैसे, बनियेने एक रुपया, कपड़ेवालेने सौ रुपये, छोटे सुनारने हजार रुपये, बड़े सुनारने दस हजार रुपये और जौहरीने दस लाख बताया। तब वह शिष्य आश्चर्य-चकित होकर राजाके पास गया। राजाने बड़े-बड़े जौहरियोंको बुलाकर उस पत्थरका मूल्य पूछा। उन जौहरियोंने कहा—हे राजन्! आप अपना सारा राज्य दे डालें तो भी इस पत्थरका मूल्य नहीं आँका जा सकता।

राजाने उस चेलेसे कहा—'महाराज! पचास करोड़ रुपये तो मैं अभी दे सकता हूँ। आप अपने गुरुसे पूछिये कि वे कितनेमें दे सकते हैं? माँगेंगे, उतना ही दे सकता हूँ।'

शिष्य गुरुजीके पास गया। गुरुजीने कहा—इसको लोहेके छुआओ! लोहेके छुआनेके साथ ही वह लोहा स्वर्ण बन गया। तब गुरुजीने कहा—इसको जितनेमें भी बेचो, ठगाई-ही-ठगाई है। अब जा! इसको गंगाजीमें फेंक दे। यह चीज गुप्त रखनेकी है। लोगोंको मालूम हो जायगा तो वे लड़कर मर जायँगे। हम इसका बोझ ढोकर क्या करेंगे? शिष्यसे वह पत्थर फेंका नहीं गया। तब महात्माने लेकर गंगाजीमें फेंक दिया। शिष्य बोला—महाराज! आपने यह क्या किया? गुरुजीने कहा—थोड़ा लोहा और ला। उसको लेकर अपने सिरके रगड़ा तो वह भी सोना बन गया। शिष्य चकरा गया। गुरुजीने कहा—किसीको यह बात कहना नहीं, नहीं तो लोग हमारा सिर फोड़ देंगे। मूर्ख! तू तो

इसको तीन पैसेमें बेचनेको तैयार हो गया था!

समय अमूल्य है। समयको ऐसा बना लो कि शरीर, वाणी पारस हो जायँ। ऐसी योग्यता हो जाय कि उसकी दया-दृष्टिसे पापी भी मुक्त हो जायँ।

ऐसे मनुष्यका जीवन ही अमूल्य है। जो जितने कम मूल्यमें अपने समयको बेचता है, वह उतना ही मूर्ख है, जैसे—पारसका मूल्य राजाका सर्वस्व देकर भी पूरा नहीं हुआ।

चेतन आत्माका कितना मूल्य है! माथेसे लगाकर लोहेको सोना बना दिया तो क्या हुआ? वाणीके द्वारा वृक्षको कल्पवृक्ष बना दिया, पत्थरको पारस बना दिया तो क्या हुआ? महान् विलक्षण पुरुषके दर्शन, भाषण, स्पर्शसे, उसकी दया-दृष्टिसे पापी पुरुष भी परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं।

लाखों बार ब्रह्मा होनेपर भी संसारके दुःखोंसे पिण्ड नहीं छूटता है। जबतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी, तबतक चौरासी लाख योनिके यन्त्रमें घूमना ही पड़ेगा।

हम ऐसे बन सकते हैं, जिससे स्वयंको तथा लाखों मनुष्योंको भगवत्-प्राप्ति हो सकती है। समयके ऐसे मूल्यको समझकर भी ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो समयको व्यर्थ खोवेगा? हे परमात्मा! हे प्रभो!! जब यहाँतक सुननेमें आता है तो हे नाथ! मुझे आप ऐसा सेवक बना दें कि (काशीमें शिवजीकी तरह) मुक्तिका सदाव्रत बाँटता रहूँ। आपका ही सदाव्रत है, मैं बाँटकर अपना मन प्रसन्न कर लूँ।

इस तरहकी योग्यता मनुष्यकी बन सकती है। मनुष्य इतना ऊँचा बन सकता है, फिर भी हमलोग अभीतक अपना पेट भी पाप करके ही भरते हैं, ऐसे जीवनको धिक्कार है! मनुष्य-

जीवनमें इतनी उन्नति हो सकती है और हमलोग इतने गिरे हुए हैं! मनुष्य-शरीरमें आकर नीचे योनियोंमें जाना पड़े, उसको धिक्कार है।

जहाँ योग्यता है, जहाँ साधन है, जहाँ उपाय है, वहाँसे जो नीचे गिरता है, उसको बारम्बार धिक्कार है।

तुम्हारी बातपर ईश्वर तो क्या तुम्हारी स्त्री, बालक भी विश्वास नहीं करते; तुम्हारे मुनीम, सेवक भी विश्वास नहीं करते। तुम्हारी वाणीका इतना ही मूल्य है? तुम्हारेमें और पशुओंमें क्या अन्तर है? दोनों ही दयाके पात्र हैं। संसारमें व्यर्थ ही आये, मातासे व्यर्थ ही बोझ ढुलाया। पत्थर होता तो दीवाल बनानेके काम तो आता। अच्छे-अच्छे भोजनके पदार्थ खाकर पृथ्वी गन्दी की, क्या मनुष्यका जन्म इसी बातके लिये मिला था?

मनुष्यका जीवन जीते हुए ही काममें आता है, पशुका शरीर तो मरनेके बाद भी काममें आता है। मनुष्यका हाड़, माँस, चमड़ी—कुछ भी काममें नहीं आता। राख होकर उड़ जायगी। जबतक यह राख नहीं उड़े, उसके पहले-पहले ही जिस कामके लिये आये हो, उसे पूरा कर लो। चूको मत। सब काम धरे रहने दो। बस, यह काम पूरा कर लो। अन्यथा तुम्हारी क्या दशा होगी? तिर्यक् योनिमें पड़नेके बाद किसकी सामर्थ्य है, जो तुमको वहाँसे वापस लाये? बद्रीनाथके पहाड़ोंसे कोई गिरे तो उसको उठानेवाला भी मिल सकता है, पर मनुष्य-शरीरसे गिरे हुएको उठानेवाले नहीं मिलते। उत्तरोत्तर उन्नति करो। आपकी दृष्टिमें जो आवश्यकसे आवश्यक सांसारिक कार्य हैं, वे चूल्हेमें जायँ। तुम मर जाओगे तो उस कार्यको दूसरे कर लेंगे। तुम्हारे

बिना नहीं होवे तो मत होओ, परन्तु तुम्हारी मृत्यु आ जाय और तुम दूसरी योनिमें गिर गये तो फिर तुम्हारा कौन सुधार करेगा? सब स्वार्थके मित्र हैं। क्यों अपने जीवनको धूलमें मिलाते हो?

कोई लाख रुपया कमाता है और उसमें अपना समय लगाता है तो वह पशुसे भी अधिक गया-बीता है, पत्थर ही ढोता है। पत्थर और सोना-चाँदी सब पृथ्वीमेंसे ही निकलते हैं। वजन दोनोंमें ही है। दस करोड़ कमाया और मरकर कुत्ता बन गये तो वह धन तुम्हारे क्या कामका? इस भौतिक उन्नतिका एक पैसा भी मूल्य नहीं है, जिस प्रकार स्वप्नकी उन्नति जाग्रत्‌में कुछ भी काम नहीं आती है। जैसे भिखमंगा स्वप्नमें करोड़पति हो जाय, वास्तवमें तो वह भिखमंगा ही है, ऐसे ही ये सब चीजें यहाँ ही रहनेवाली हैं। एक पाई भी साथ जानेवाली नहीं है।

जो ले जाना चाहे, वह ले जा भी सकता है। बुद्धिमान् मनुष्य कोई वस्तु कहीं भेजना चाहे तो वह पार्सल या रजिस्ट्री द्वारा भेज सकता है। यों-का-यों नहीं जा सकता है, परन्तु डाक द्वारा जा सकता है।

उस तन, मन, धनको दुःखी-अनाथोंकी सेवामें लगाना ही परलोकमें पहुँचानेका मार्ग है। परमात्माकी प्राप्ति कर ली, तब तो यह और वह—सब राज्य अपना ही है।

और भी एक मार्ग है—मरे ही क्यों? ऐसा जीवन्मुक्त बन जाय कि उसकी चाह भगवान् भी करें। भगवान्‌ने कहा है कि गीताके प्रचार करनेवालेके समान मेरा प्यारा न कोई है, न होगा—

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥

(गीता १८। ६८)

जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझको ही प्राप्त होगा— इसमें कोई सन्देह नहीं है।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

(गीता १८। ६९)

उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है; तथा पृथ्वीभरमें उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा कोई भविष्यमें होगा भी नहीं।

जिस किसी प्रकारसे भी गीताका प्रचार हो, इसकी चेष्टा प्राण-पर्यन्त करे। गाँव-गाँव, घर-घरमें, पुस्तकोंके द्वारा, व्याख्यानके द्वारा, भावके द्वारा खूब प्रचार कर दे। गीता भगवान्‌का साक्षात् स्वरूप है, प्राण है। ऐसा अपनी आत्माको बना ले कि एक गीता-भगवतीके प्रतापसे सब कुछ हो जाय। गीताके अनुकूल बर्ताव, वाणीमें गीता, गीताके अनुसार मन, गीताके अनुकूल आचरण, गीताके अनुकूल भाव, गीताके अनुकूल हृदय, गीताके गुण, गीताके अनुकूल चलना, सोना, उठना आदि क्रियाएँ हों और गीताकी ही चर्चा हो। उसके रोम-रोममें गीता रमी हुई है। भगवान्‌की प्रतिज्ञा है कि उससे बढ़कर मेरा प्यारा न तो कोई हुआ है और न कोई होगा।

गीताका उपदेश ही मुक्तिका सदाव्रत है। जो पुरुष उसके उपदेशको धारण करता है, वही मुक्त है। वही मुक्तिका सदाव्रत बाँटता है। पत्ते-पत्तेमें, वृक्ष-वृक्षमें, गाँव-गाँवमें जगह-जगह उसकी ध्वनि गुंजार करके व्यापक कर दे—ऐसा अपना जीवन बना ले।

मनुष्यका शरीर और बुद्धि पाकर भी हमलोग यदि अपना

पतन करें, फिर भी कोई हमें मनुष्य कहे तो वह सही नहीं है। प्रत्यक्षमें आत्माका कल्याण हो, ऐसे काममें समय न बिताकर, जो व्यर्थ कार्यमें समय बिताते हैं, वे गड्ढा खोदकर मर रहे हैं, उनको धिक्कार है।

मनुष्यको बार-बार जगानेकी, चेतानेकी, बल दिलानेकी आवश्यकता है। यह जीव चेतन है, इसकी शक्ति अपार है—आगकी चिनगारीकी तरह। यदि वह चिनगारी अपने वास्तविक रूपको धारण कर ले तो सारे ब्रह्माण्डको जला सकती है। यह जीवात्मा परमात्माका अंश ही है। अग्निकी चिनगारी है, वह साक्षात् आग ही है। फूँक देनेवाला, हवा देनेवाला हो तो वही चिनगारी आगका रूप धारण कर लेती है। इसी प्रकार इस जीवात्माकी इतनी शक्ति है कि वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका उद्धार कर सकती है। मनुष्यको सत्संग रूपी पंखेकी हवा मिलती रहे तो वह सम्पूर्ण संसारको हिला दे, जैसे हनुमान्‌जीको जाम्बवान्‌ने बल याद दिलाया और वे समुद्रको एक खाईकी तरह लाँघ गये।

हम सबमें वह चेतन शक्ति परिपूर्ण है। जाम्बवान्‌की तरह कोई चेतानेवाला हो, फिर इस संसार-समुद्रको लाँघना कौन बड़ी बात है?

प्रभाव तो सब जगह परिपूर्ण हो रहा है, हमें सावधान होना चाहिये, सचेत होना चाहिये, जागना चाहिये—**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।** (कठोपनिषद् १। ३। १४)

हे मनुष्यो! उठो, जागो श्रेष्ठ महापुरुषोंको पाकर—उनके पास जाकर उनके द्वारा उस परब्रह्म परमेश्वरको जान लो।

महान् पुरुषके समीप जाकर यह बात समझो और संसारसे पार हो जाओ। आप भी महान् बन सकते हो, उस परमात्माके

साक्षात् रूपको प्राप्त हो सकते हो। वामन भगवान्‌ने एक ही पगमें सम्पूर्ण संसारको नाप लिया, ऐसे ही हमलोग सम्पूर्ण संसारको लाँघ सकते हैं। वही शक्ति अपनेमें है। उसीके हम अंश हैं। खूब हिम्मत रखो। भगवान् सहारा देनेके लिये तैयार खड़े हैं। उनकी पूर्ण कृपा हो रही है। इस संसार-सागरको लाँघना क्या बड़ी बात है? खूब हिम्मत रखो। भजन-साधन करते रहो। बँधेगा सो फँसेगा, फिरेगा सो चरेगा। मायाकी फाँसीसे बँधेगा, वह मरेगा। मायाका बन्धन काटकर हर समय भजन-साधनकी चेष्टा करते रहो, कुछ ही दिनोंमें कायापलट हो जायगी। लोग कहेंगे कि ये महापुरुषोंके पास किस रूपमें गये थे और आये हैं किस रूपमें।

भगवान्‌को याद रखनेका यही उपाय है कि उनको हृदयमें अंकित कर लो। नहीं तो कलमसे पकड़ लो। उन बातोंको लिखकर कापियोंको सामने रखो। ये बातें बार-बार खयाल करके आचरणमें लाओ। बार-बार एकान्तमें बैठकर मनन करो, काममें लाओ।

गीताकी बातोंको आदर दो, उसकी महिमा समझो। जिस तरह व्यवसायमें बड़ी कमाईकी बातको याद रखते हो, उसी तरह गीताकी बातोंको भी याद कर-करके पक्की कर लो। इसमें बड़ा लाभ है। अमूल्य समयको अमूल्य कार्यमें ही बिताना चाहिये।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

सिद्धान्तकी अनमोल बातें

सबसे बढ़कर यह बात है कि उत्तम गुण, उत्तम आचरणका उपार्जन करना चाहिये एवं बुरे गुण, बुरे आचरणोंका त्याग करना चाहिये।

ईश्वरकी बड़ी कृपा है। उसकी कृपासे यह सब बात होगी—ऐसा विश्वास मनमें लाना चाहिये। मनमें हिम्मत रखनी चाहिये। सद्‌गुण, सदाचार, शान्ति, प्रेम, शील, सरलता, तेज और ईश्वरकी भक्ति—ये सब ईश्वरकी दयासे मेरेमें आयेंगे। इनके आनेमें कुछ भी कठिनता नहीं समझे।

ईश्वरकी दया और उसके बलके भरोसेपर इन बातोंका उपार्जन करनेका प्रयत्न करना चाहिये। नित्य देखना चाहिये कि मुझमें बुरी बातें कम हो रही हैं और अच्छी बातें बढ़ रही हैं या नहीं। यह बात प्रत्यक्षमें होगी, ईश्वरके भरोसेपर ऐसी भावना करनी चाहिये।

हममें एक तिनका तोड़नेकी भी स्वतन्त्रता नहीं है। पेशाब करना, भोजन करना भी अपने हाथकी बात नहीं है। अभी पेशाब बन्द हो जाय तो क्या कर सकते हैं, परन्तु ईश्वरका विश्वास रखना चाहिये। जो ईश्वरका विश्वास रखता है, ईश्वर उसकी सहायता करते हैं।

भगवान्‌का भजन-ध्यान और शास्त्रका विचार—इन विषयोंमें स्त्री, पुत्र, माँ-बाप, भाई या अन्य कोई सम्बन्धी अटकावे तो पहले तो उनको इस विषयमें उचित रीतिसे समझा देवे। इसपर भी वह नहीं समझें तो उनकी बातोंपर ध्यान नहीं देवे। अपना

प्रवचन तिथि—वैशाख शुक्ल १५, शुक्रवार, संवत् १९८९ सन् १९३२, दोपहर, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

भजन-ध्यानका काम जैसे करना हो, उसी तरह करे। इस कारणसे यदि उनका व्यवहार बिगड़े तो फिर सहनशक्ति रखे, उनके व्यवहारसे उखड़े नहीं उनकी अन्य सब बातें माने और भजन-ध्यान करते हुए उनको प्रसन्न करनेकी ही चेष्टा करे।

कोई भी साधु-महात्माका संग करें तो बैठकर उनकी बातें सुननेकी अपेक्षा उनके बताये हुए मार्गपर चलना श्रेष्ठ है। उनकी वाणी, सलाह, आदेश, संकेत—जिस किसी तरहसे वे मार्ग बतावें, उसपर चलनेसे जितना लाभ है, उतना उनकी शारीरिक सेवासे नहीं है। उनका वास्तविक आदर यही है कि उनके बताये हुए मार्गपर चलना। अच्छे पुरुषोंके अभावमें उनके द्वारा बनाये हुए शास्त्रोंका संग ही साधु-संग है।

सबसे अधिक लाभ देनेवाला काम यह है कि समयपर, न्याययुक्त जो काम आकर प्राप्त हो जाय, वही स्वार्थ-त्यागीके लिये सबसे बड़ा काम है। जैसे दो दिन पहले गीताकी चर्चा हो रही थी, उस समय एक भाईके पत्थरकी चोट लगी, उस समय सेवाका वही काम बड़ा था। गीता तो आपलोग बादमें भी सुन सकते हैं। कोई बीमार हो, डूबता हो या और कोई भी सेवाका ऐसा काम आ पड़े तो उस समय उस कामको सत्संगसे अधिक आदर देना चाहिये। उस समय उस कामको मूल्यवान् समझकर करे। अपनी बुद्धिमें दूसरा कम मूल्यवान् दीखे तो भी उसकी परवाह न करे। जिस कार्यमें परिश्रम, झंझट हो एवं देखनेमें कामका दर्जा छोटा हो और उस कामको करनेमें दूसरे व्यक्ति हटते हों तो उस जगह उस कामको पहले करना चाहिये। नीची भावनासे बड़ा काम भी छोटा हो जाता है और ऊँची भावनासे छोटा काम भी बड़ा हो जाता है। जो बुद्धि द्वारा समझमें आ

जाय, उसे बल द्वारा कार्य रूपमें परिणत कर लेना चाहिये। निर्णय करनेपर ठीक समझमें आ जाय तो उस कामको करनेके लिये तत्पर हो जाना चाहिये। उस काममें तत्परताका न होना ही अकर्मण्यता है। आलस्य अथवा अभ्यास न होनेके कारण कोई सेवा इत्यादिका काम अच्छा समझनेपर भी नहीं होता हो तो उसको बलपूर्वक करना चाहिये, तभी वह काम होगा।

शत्रु, विपरीत पक्षवाले, द्वेषीके साथ व्यवहार करनेका अवसर आ जाय, उस समय गम्भीरतासे काम लेना चाहिये। उखड़नेसे क्रोध आना स्वाभाविक है। क्रोध आनेसे अपना पतन हो जायगा।

प्रतिपक्षी, वैरी, द्वेष रखनेवालोंका भी उपकार करे तथा धर्म, न्याय, सत्यकी रक्षा करते हुए उनके अनुकूल बर्तावकी चेष्टा करे। तन, मन, धनसे सहायता करे। व्यवहार करते समय उदारतासे काम ले। युधिष्ठिरका दुर्योधनके साथ बर्ताव याद कर ले। बात करनेमें गम्भीरता, समता और उदारताको याद रखे। मुखसे वचन सोच-विचार कर निकाले। गम्भीरताका अर्थ है—नाना प्रकारकी खराब और चुभती हुई बातोंको सहन करना।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥

(गीता २। ७०)

जैसे नाना नदियोंके जल जब सब ओरसे परिपूर्ण, अचल प्रतिष्ठावाले, समुद्रमें उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुषमें किसी प्रकारका

विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही पुरुष परम शान्तिको प्राप्त होता है, भोगोंको चाहनेवाला नहीं।

समुद्र सब नदियोंको अपनेमें समा लेता है, इसी प्रकार उनके कठोर वचन रूपी नदियाँ, कान रूपी द्वारोंसे, हृदय रूपी समुद्रमें समा जाती हैं। प्रतिपक्षी चाहे जैसे बोले, गम्भीर रहे।

उदारता—भलाई करनेवालेके साथ तो दुनिया भी भलाई करती है। यह स्वभाव तो कुत्तोंमें भी देखा गया है, यह स्वभाव तो सबका ही है, परन्तु जो अपने साथ नीच व्यवहार करे, उसके साथ साधु व्यवहार करना उदारता है।

समता—कोई भी चीज अपने पास है उसे मित्र और शत्रु दोनोंमें समान भावसे बरते, जैसे—महाराज श्रीकृष्णके पास दुर्योधन और अर्जुन दोनों गये, उस समयका उसका व्यवहार याद कर लेना चाहिये। उस समयकी उनकी समतामें उदारता है, इससे अधिक उदारता करनेसे अनुचित हो सकता है। न्यायकी रक्षा और धर्मका पालन करते हुए उदारता, गम्भीरता और समताका व्यवहार रखना चाहिये। अप्राप्त भयसे अपनी रक्षा करनी चाहिये, प्राप्त भयका सामना करना चाहिये, उससे डरना नहीं चाहिये। आपत्ति आकर प्राप्त हो, उस समय धीरता और वीरता—ये दो गुण रखने चाहिये। धीरता और वीरताकी शरणसे ही धर्मकी रक्षा होगी। आपत्ति भी धीरता और वीरतासे ही कम होगी। उस जगह रोने नहीं बैठ जाना चाहिये, चाहे जो विपत्ति आकर प्राप्त हो जाय। मनुष्यकी धीरता, वीरता उसी समय काम आती है।

बड़ोंकी सेवा और उनके पास रहकर उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

गुण, बुद्धि, अवस्था, विद्या, पद—किसी भी प्रकारसे बड़े और पूज्य पुरुष हों, उनका सेवन करना चाहिये। उनमें जो गुण हैं, उनको धारण करना चाहिये और उनमें जो अवगुण हों, उनकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। उत्तम बात धारण करनी चाहिये, उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये, परन्तु पापवाली बात स्वयं ब्रह्माजी कहें तो भी नहीं माननी चाहिये। दो बड़े हों और परस्पर विरुद्ध आज्ञा देते हों तो जिसकी न्याययुक्त आज्ञा हो, वही माननी चाहिये। दोनों ही ठीक कहते हों, परन्तु पालन करनेमें आपत्ति आती हो तो स्वार्थको छोड़कर सोचना चाहिये और उस कार्यको करनेमें शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। धर्म-संकटके अवसरपर शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। ऐसी अवस्थामें धर्मकी रक्षाके लिये थोड़ा पाप स्वीकार कर लेना चाहिये। दोनोंमें समान पाप हो तो गम्भीरतापूर्वक सलाह लेनी चाहिये। सलाह देनेवाला नहीं हो तो ठहर जाना चाहिये, शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। (इस प्रसंगमें गौतम और चिरकारीका दृष्टान्त देखना चाहिये)।

जाति, समाज, घर, गाँव—कहीं भी समुदायमें लड़ाई हो जाय तो निरपेक्ष भावसे स्वार्थ त्यागकर उसको मिटानेकी चेष्टा करनी चाहिये। वह व्यक्ति दलबंदी मिटानेके उद्देश्यसे दल बना सकता है। निर्बल और न्याययुक्त दलका पक्ष लेना चाहिये। प्रधान बात—दोनों न्याययुक्त हों तो निर्बलके साथ होना चाहिये। अन्तमें विजय न्यायकी ही होगी। अन्यायकी विजय हो जाय तो वह परिणाममें विनाशकारक ही होगी। जहाँ न्याय है, वहीं भगवान् हैं।

प्रेमके विषयकी बात सार रूपमें कही जाती है—प्रेमके योग्य एक परमेश्वर ही हैं। परमेश्वरके लिये किसीसे भी प्रेम करना

परमेश्वरसे ही प्रेम करना है। सम्पूर्ण संसारमें भगवान्‌के नाते हेतुरहित प्रेम करना परमेश्वरसे ही प्रेम करना है। परमेश्वरका स्वरूप धर्म, सत्य, न्याय, प्रेम, दया है। लोकमें प्रसिद्ध जो झूठ-साँच है, उन दोनोंसे ही वह परमेश्वर परे है। जैसे गन्धकको साक्षात् आग बताया जाता है; केरोसिन, पेट्रोल और घासके भीतर प्रत्यक्षमें आग दिखायी नहीं देती है, परन्तु उनमें आग व्यापक हो रही है, दियासलाई दिखानेकी देर है, इसी प्रकार उपरोक्त स्थानों (धर्म, सत्य, न्याय, प्रेम और दया)-में भगवान् क्षणभरमें प्रकट हो सकते हैं। इनमें भगवान् व्यापक हो रहे हैं। विशेष रूपसे भगवान् इन्हींमें विराजमान हैं। जहाँ न्याय है, वहीं भगवान् हैं—

यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः। (महाभारत)

जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं धर्म है और जहाँ धर्म है, वहीं विजय है।

धर्ममें भगवान्‌का वास है। दियासलाईकी रगड़से जैसे आग प्रकट हो जाती है, वैसे ही धर्मकी रगड़से भगवान् प्रकट हो जाते हैं। जो सत्यका पालन करता है, उसको कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं है। सत्य ही साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप है। सत्यमें भगवान्‌का वास है। हरिश्चन्द्रकी सारी नगरी सत्यके प्रतापसे वैकुण्ठको चली गयी।

उत्तम पुरुषको न्याय और सत्य प्रिय होते हैं। शत्रु भी उनके न्याय और सत्यकी प्रशंसा ही करते हैं। सत्य, न्याय, धर्म—इनमें थोड़ा-थोड़ा अन्तर है। वास्तवमें तो एक ही वस्तु है। न्याय ही सत्य है। जिस सत्यमें न्याय नहीं है, वह सत्य, सत्य नहीं है। नीतिसे धर्मका दर्जा ऊँचा है। चार भाई बँटवारा करते हैं—५०००

में १२५०-१२५० का हिस्सा करना चाहिये—यह नीति है, परन्तु उनमें एक भाई कमजोर है, इसलिये अपने हिस्सेमेंसे उसको अधिक दिया गया, यह विशेष उदारता करना धर्म है। वही कर्तव्य है, परन्तु बराबर देना भी न्याय है। त्याग करनेवाला न्यायसे ऊँचा है। न्यायके पेटमें धर्म और नीति दोनों ही हैं। धर्म न्यायसे ऊँचा बढ़ गया। न्यायका दायरा बड़ा है, परन्तु दर्जा धर्मका ऊँचा है। धर्मसे भी सत्यका दर्जा और ऊँचा है। उदाहरण—दशरथजी और रामचन्द्रजीका। धर्म था—रामजीको राजगद्दी देना, परन्तु कैकेयीको दिये हुए वचनका पालन करके जगत्‌को दिखा दिया कि सत्य ही बड़ा है। मर गये, परन्तु सत्यका ही पालन किया।

सम्पूर्ण संसारके जीवोंके साथ सेवा, सत्कार, दया और उदारताका बर्ताव करना—यह भगवान्‌से ही प्रेम करना है। परमेश्वरमें प्रेम करना ही विश्वप्रेम है। स्वार्थ त्यागकर सबका हित चिन्तन करनेसे सबमें प्रेम होता है। यह क्रिया ही प्रेम करानेमें हेतु होती है। जो ईश्वरका प्रिय होता है, वह इसी प्रकार चाहता है। इसलिये जो ईश्वरका प्रेमी है, वह सबका प्रेमी है—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥

(गीता १२। १३)

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहंकारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है।

जो सबके साथ हेतुरहित प्रेम करता है, वही मेरा प्रेमी है।

वह इस बातको जानता है कि सब मेरी आत्मा है। एक व्यक्ति मेरी आठ अँगुलियोंकी तो पूजा करे और दो अँगुलियोंमें आग लगावे, वह प्रेमी थोड़े ही माना जायगा। सम्पूर्ण जीव परमात्माकी आत्मा हैं। भगवान्के वचन हैं—जो मनुष्य एक जीवको भी जान-बूझकर कष्ट देता है, वह मेरेको नहीं पाता है। दूसरा आदमी चाहे वैर रखे, परन्तु भक्त बदलेमें उससे वैर रखता है तो वह मेरेसे ही वैर रखता है, क्योंकि मैं ही सबकी आत्मा हूँ—

निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

(गीता ११। ५५)

जो सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें वैरभावसे रहित है—वह अनन्य-भक्तियुक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।

स्वार्थरहित होकर सबके साथ प्रेम करना चाहिये। ईश्वरके साथ प्रेम करना सबके साथ प्रेम करना है और सबके साथ प्रेम करना ही ईश्वरसे प्रेम करना है।

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

(रा० च० मा० किष्किन्धाकाण्ड दोहा ३)

सम्पूर्ण चराचर परमेश्वरका ही स्वरूप है। जहाँ कहीं प्रेममें बाधा आती है, वहाँ हमारा शत्रु स्वार्थ रहता है। जहाँ स्वार्थ नहीं, वहाँ बाधा नहीं ठहर सकती। धन, मान, बड़ाई, लोक, परलोक—ये सब प्रकारके स्वार्थ प्रेममें बाधक हैं। कोई अपनी प्रतिष्ठाका अहंकार करके कहे—मेरे सामने वह क्या है?—यह अहंकार वैर करानेवाला है। जो पुरुष ईश्वरमें प्रेम करना चाहे, उसको ऐसा विचार करके स्वार्थका त्याग कर देना चाहिये। पारमार्थिक स्वार्थ सहायक है, सांसारिक स्वार्थ मुक्तिमें बाधक है। रोम-रोममें,

पद-पदमें, बात-बातमें स्वार्थकी मात्रा भरी हुई है।

बिना प्रयोजन किसीसे बात नहीं करना—यह तुच्छ नीचे दर्जेका प्रयोजन है। यह तुच्छ उद्देश्य ही मनुष्यको तुच्छ बनाकर तुच्छ गति देता है। ऐसा उद्देश्य बहुत छोटा है। छोटा है, वह खोटा है। इसलिये हरेक मनुष्यको अपने उद्देश्यको सत्-उद्देश्य, महान् उद्देश्य बनाना चाहिये। जितना उद्देश्य ऊँचा होगा, उतना ही शीघ्र पहुँचेगा। उद्देश्य एक साधन है। योगसे एक क्षणमें, विमानसे आधा दिनमें, रेलगाड़ीसे दो दिनमें और पैदल जायँ तो दो महीनेमें मार्ग तय होता है, यह सब मार्ग तय करनेके साधन हैं। जितना ऊँचा उद्देश्य और भाव हो, उतना ही लाभ है। छोटा कार्य भी उद्देश्य ऊँचा होनेके कारण ऊँचा हो जाता है। ईश्वरमें और सम्पूर्ण संसारमें हेतुरहित प्रेम करना—इसका दर्जा परमात्माके समान है। हेतुरहित सेवा, दया और उदारता—इन सबको परमात्माके समान दर्जा दिया गया है।

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥

(रा० च० मा०, ७। ४७। ५-६)

बिना प्रयोजन प्रेम करनेवाले दो ही हैं—या तो आप या आपके दास।

सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

(रा० च० मा० ४। १२। २)

हेतुरहित और प्रेमसे भजन करना भगवान्‌के समान है। इसीको—**ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्** (गीता ७। १८)—ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है—ऐसा कहा है। ज्ञानी-अर्थात् निष्कामी।

सा (भक्तिः) परानुरक्तिरीश्वरे—(शाण्डिल्य-भक्ति-सूत्र १। १। २)

अर्थात् वह भक्ति ईश्वरके प्रति परम अनुरागरूपा है। इसे ही पराभक्ति कहा गया है।

हेतुरहित प्रेमका नाम भक्ति है। ऐसा प्रेम परमात्मामें करना चाहिये। भगवान्के प्रेम, गुण, प्रभावकी कथाका श्रवण, मनन, पठन-पाठन करे। भगवान्की रहस्यमयी, तत्त्वमयी, अमृतमयी कथाका श्रवण करे तो भगवान्में प्रेम हो। यह चेष्टा रखे कि ईश्वरमें प्रेम कैसे हो।

इसी बातकी लालसा, उत्कण्ठा, चेष्टा, उपाय अपनी बुद्धिके अनुसार करे। उस प्यारे प्रेमीसे मिलनेकी इच्छा, उसीके नामका जप, स्वरूपका चिन्तन और उसीके अनुकूल बर्ताव करे। अपनी कोई भी चीज प्यारेके काममें आ जाय तो प्रेममें समावे ही नहीं—यह प्रेमका उपाय है।

जहाँ प्रेमका बाहुल्य होता है, वहाँ नीति, न्याय, धर्म—सब परे हो जाते हैं, पर दया वहाँ भी रहती है। प्रेमके बाहुल्यमें ज्ञान न रहनेसे किसी समय दयाका त्याग भी हो जाय तो वह वास्तवमें दयाका त्याग नहीं है।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

हे नाथ! मुझे दर्शन देने ही पड़ेंगे

दिनमें भगवान्‌के निराकार स्वरूपका तत्त्व बताया। उसको समझते हुए भगवान्‌के साकार रूपका ध्यान करना मूल्यवान् है।

प्रत्येक व्यक्तिको परमात्माके रहस्यकी, तत्त्वकी बातें समझनेकी आवश्यकता है। स्त्रियोंको भी इन बातोंको समझनेकी आवश्यकता है। वर्तमान वेदान्तमें तो केवल ज्ञानका नाम ही नाम है, ये बातें वे नहीं समझते। जो भगवान्‌के निराकार स्वरूपके तत्त्वको समझ लेता है, उसको उसी समय परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। समझते ही प्राप्ति है। जैसे साकारमें श्रद्धा और प्रेमकी आवश्यकता है, वैसे ही निराकारमें समझकी प्रधानता है। समझते ही उसकी परमात्मामें स्थिति हो जायगी। समझमें आनेके लिये बुद्धि और मनके लगानेकी आवश्यकता है।

साकार ईश्वरमें यह विश्वास हो कि वे निश्चय ही मिलेंगे, उनकी अथाह दया मानकर गले पड़नेकी तरह रोवे तो उसको आज ही परमात्माका दर्शन हो जाय।

जितनी अधिक श्रद्धा और प्रेम होगा, उतने शीघ्र भगवान् मिलेंगे, क्योंकि भगवान् बड़े दयालु हैं। फिर वे रह नहीं सकेंगे जैसे—द्रौपदीका आर्तनाद सुनते ही भगवान् प्रकट हो गये। बुद्धि भले ही बिल्कुल बालकके समान हो, श्रद्धा और प्रेमकी जितनी अधिकता होगी, उतने ही शीघ्र भगवान् मिलेंगे।

भगवान्‌की सम्पूर्ण दयाको लोग समझ नहीं सकते। रोनेमें हेतु स्नेह और मोह है। 'हे नाथ! चाहे मेरा बालकपन समझो,

---

प्रवचन तिथि—ज्येष्ठ कृष्ण ५, संवत् १९८९, मंगलवार, सन् १९३२ रात्रि, स्वर्गाश्रम।

चाहे मेरी मूर्खता मानो, मुझे तो दर्शन देने ही पड़ेंगे' ऐसा विश्वास हो जाय कि मुझे तो भगवान् अभी मिलेंगे।

एक उपाय तो यह है कि एकदम विश्वास रखकर शरण हो जाय, पीछे उनकी इच्छा।

दूसरा उपाय यह है कि बालकके समान हठ पकड़ ले कि—'बस! मैं तो अभी ही मिलूँगा। मैं तो आपके शरण हो गया, अब आप जानें। आपकी सब बातें मुझे स्वीकार है, परन्तु मेरेमें आपका वियोग सहनेकी शक्ति नहीं है—मेरा इतना-सा बालकपन है। और बातें तो आप कहें वैसे ही ठीक हैं, पर आपके वियोगमें रहनेकी मेरी सामर्थ्य नहीं है।' जैसे लक्ष्मण और सीताजीका भगवान्के वनगमनके समयका बर्ताव।

उपरोक्त दोनों ही उपाय कामके हैं।

सीताजीको रावण हरण करके ले गया। अशोकवाटिकामें हनुमान्जी सीताजीको कहते हैं—'मैं आपको ले चलूँ?'

तब सीताजी कहती हैं—'ना! महाराज आकर ले जायँ।' मछलीकी तरह तड़प रही हैं, फिर भी किसी दूसरेके साथ जानेको तैयार नहीं हैं।

निराकारका तत्त्व समझमें आते ही सब पापोंका नाश हो जाता है। साकार भगवान्का दर्शन होते ही सारे अवगुणोंका नाश हो जाता है।

साकारका प्रत्यक्षमें दर्शन होते ही सद्‌गुण, सदाचार अपने-आप ही आ जाते हैं। जपसे, ध्यानसे पापोंका समूह एकदम नष्ट होता जाता है। रहे-सहे पाप भगवान्का दर्शन होते ही एकदम नष्ट हो जाते हैं।

निराकारका विषय प्रत्यक्ष वही है, जो आत्मामें समझमें आ

जाय, ज्ञानद्वारा प्रत्यक्ष हो जाय। साकारका नेत्रोंद्वारा प्रत्यक्ष दर्शन ही प्रत्यक्ष है।

ध्यान करनेसे आत्माका तत्त्व अधिक जाना जाता है, इसीका नाम उपासना है। संसारमें ध्यान सबसे बढ़कर है।

निदिध्यासनमें जप सहायक होनेके कारण ही जपको प्रधानता दी जाती है। स्तुति और प्रार्थनामें भी प्रधानता भगवान्‌के विशेषणोंकी है। भगवान्‌से संसारकी वस्तु माँगे तो नीचा दर्जा ही है। स्तुतिसे प्रार्थना नीचे दर्जेकी है। ऊँचे उद्देश्यकी प्रार्थना भी निष्कामके तुल्य ही है। स्तुति तो निष्काम है ही।

समझनेका महत्त्व यही है कि उसके अनुसार आचरण करें तो उसके द्वारा अपने-आप काम होगा। यदि यह बात समझमें आ जाय कि इस वस्तुमें विष मिला है, फिर उस वस्तुको कोई भी नहीं खा सकता। विचारके द्वारा समझी हुई बातें धारण हों तभी वास्तविक समझ है।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

जो कुछ होता है, परमात्माकी दृष्टिमें होता है

भक्तिके मार्गमें यही दो बातें हैं—एक तो अपनेको ईश्वरके अर्पण करना और दूसरा मैं-मेरेका त्याग। मैं और मेरेमें ही दुःख होता है। इन दोनोंको ईश्वरके अर्पण कर दो, फिर दुःख नहीं होगा। जैसे यह कम्बल मेरी है, यह कम्बल यदि मैं किसीको दे दूँ, वह इस कम्बलको चाहे बिछाये या ओढ़े, इससे मुझको कोई दुःख नहीं होता। जबतक मैं अपना अधिकार मानता हूँ, तभीतक दुःख होता है। इसलिये सब चीजोंका अधिकार ईश्वरके अर्पण कर देना चाहिये। चीज तो वहीं-ही-वहीं पड़ी है, दूकानका नाम बदल दें कि सब परमात्माकी ही है, फिर निश्चिन्त हो जायँ। मेरी जितनी चीजें हैं, सब भगवान्‌की ही हैं, सच्चे मनसे भगवान्‌को सँभला दो। भगवान्‌को सब सँभलाकर, फिर भगवान्‌का सेवक बनकर सब काम करो। सेवकको जो काम जिस तरह करना चाहिये, उसी तरह करते रहो, परन्तु बाजार घट गया या बढ़ गया, उसके लाभ-हानिके स्वामी भगवान् हैं। भगवान्‌के दास होकर उनका काम करो।

जैसे कोई चीज किसीको देते हैं, उसी तरह अपने-आपको भी भगवान्‌के अर्पण कर दो। वह चीज फिर भगवान्‌की ही है, भगवान् अपनी इच्छाके अनुसार अपने काममें लें। उसका सुख-दुःख, हर्ष-शोक हमको नहीं होना चाहिये। भगवान्‌को शरीर सहित सब चीज सँभला दी, फिर शरीरके रोग हो, पुत्र जन्मे अथवा मरे, रुपया आये जा जाये, भगवान्‌को सँभलानेके बाद तुमको प्रसन्नता-दुःख नहीं होना चाहिये। अपना मानते हो तो

प्रवचन तिथि—ज्येष्ठ कृष्ण ६, संवत् १९८९, सन् १९३२, स्वर्गाश्रम।

फिर सँभलाया कहाँ? पुत्र मरा तो भगवान्‌का मरा, भगवान् रोओ! तुमने तो अच्छी तरह तुम्हारेसे शक्तिशाली सर्व-समर्थको सँभलाया है। तुमको क्यों रोना चाहिये?

ऐसे ही भगवान्‌को धन सँभला दिया, अब उनकी जो इच्छा हो, वही करें। सब देश भगवान्‌का है, उनकी इच्छा हो, सो करें, चाहे जिस देशमें भेज दें। तुम्हारे पास लाख रुपया था, चला गया, अब भगवान्‌की जहाँ इच्छा होगी, उसी दूकानमें ले जायेंगे, तुम तो सब कुछ भगवान्‌को सँभला चुके। सब कुछ उनकी इच्छा पर है, चाहे ले जावें, चाहे और बढ़ावें। यदि रोते हो तो अभी सँभलाया नहीं। जो कुछ भी हो—बढ़े, घटे, नष्ट हो। तुम्हारे अधिकारमें जितनी चीज है, उससे सब संसार, जो कि उसकी प्रजा है, उनको सुख पहुँचाते हुए काम करो। फिर घटो, बढ़ो, तुम्हारा क्या?

मैंकी बात—जैसे कोई लड़का किसीके यहाँ गोद आता है और वह बाप उस लड़केसे पूछता है—तू मेरा बेटा है? लड़का कहता है—हाँ!

किसी समय वह बाप उस लड़केके चार थप्पड़ मारता है। यदि इस व्यवहारसे वह लड़का विचलित हो जाय तो वह उसको अपना बेटा नहीं समझेगा। उसी तरह भगवान् उस सब कुछ अर्पण किये हुए भक्तको जाँच-परखकर देखते हैं कि यह वास्तवमें मेरे अर्पण हुआ है या नहीं। तुम रोओगे तो भगवान् कहेंगे कि यह अर्पण कहाँ हुआ? यह तो रोता है?

वे तुमको दुःख देते हैं तो प्रसन्न होओ कि उन्होंने मुझको स्वीकार कर लिया। अब मुझे परख रहे हैं।

बहुत व्यक्ति अपने फोड़ेको अपने हाथसे चीर डालते हैं।

मूर्ख वैद्य-डाक्टरोंके चीरनेपर भी रोते हैं। ऐसे ही परमात्मा जो कुछ भी करते हैं, वह तुम्हारे भलेके लिये करते हैं एवं पवित्र बनाते हैं, वे परम दयालु हैं। जो रोता है उसका फोड़ा डाक्टर नहीं काटता, वह फिर सड़ जाता है। जो प्रसन्न मनसे कटाता है, उसीका काटता है, ऐसे ही भगवान् उसीको मुक्त करते हैं जो उनके अर्पण हो जाता है। मयूरध्वजके लड़केको इस तत्त्वका ज्ञान हो गया था, वह कहता है—हे नाथ! शीघ्र आरी चलाओ। उसपर आरी चलती है और वह हँस रहा है। इतनेमें भगवान् प्रकट हो गये, वह परीक्षामें पास हो गया। तब भगवान् स्वीकार कर लेते हैं कि इसने सब कुछ मेरे अर्पण कर दिया।

शरीर कटानेमें हँसनेकी गुंजाइश है-रोनेकी नहीं। रोता है वह उसके तत्त्वको नहीं जानता। जो उसके तत्त्वको जान जायेगा, वह हँसते-हँसते कटायेगा और रोयेगा नहीं। आपके शरीरमें कोई रोग होता है, कष्ट होता है तो जो परमात्माके अर्पण हो गया है, वह जानता है कि जो कुछ होता है, वह परमात्माकी दृष्टिमें होता है। परमात्मा ही सब कुछ करता है। फिर केवल हँसना-ही-हँसना रहता है। भगवान् उसपर आसन लगाकर बैठ जायँ तो उसको आनन्द ही होगा, कष्ट नहीं होगा, हर्ष होगा। जब किसी स्त्रीके बच्चा होता है तो उसे कितना कष्ट होता है, परन्तु जब वह सुनती है कि लड़का हुआ है तो उसे बहुत प्रसन्नता होती है। उस प्रसन्नताके आगे वह कष्ट कुछ भी नहीं है। इतना कष्ट पाया, फिर भी आगे दूसरे लड़केकी इच्छा करती है।

दिनमें सौ रुपये दलालीके बन गये, इस कामके करनेमें चलने-फिरनेसे अब पैर दुःखते हैं, पर मनमें हर्ष हो रहा है। कोई और सौ रुपयेकी दलालीका काम बता दे तो पैर दुःख रहे हैं,

फिर भी मनमें हर्ष हो रहा है। वह यह चाहता है कि इससे दुगुना काम और मिले तो और अच्छा है। शरीरको परिश्रम और पीड़ा बढ़ रही है, गधेकी तरह खट रहा है। यह रुपयोंके महत्त्वको जाननेकी बात है, तभी इतना परिश्रम कर रहा है। इसी प्रकार भगवान्का तत्त्व जाननेके बाद भगवान्का भक्त भगवान्के प्रत्येक विधानमें जो कुछ भी हो रहा है, उसमें प्रभुकी मंगलमय मूर्तिका दर्शन करके सदा खूब प्रसन्न रहता है और हँसता रहता है।

गोपियाँ चाहती हैं कि हमारे शरीरको पीसकर भगवान् गुलाल बना लेवें अथवा हमारी चमड़ीसे जूतियाँ बना लेवें, किसी भी तरहसे हमारा यह शरीर भगवान्के काममें आ जाय।

परमात्माके चिन्तन और दर्शनमें कितना अधिक आनन्द आता है! उस आनन्दके मुकाबले उस समय उसको क्या क्लेश हो? मेरी चीज परमात्माके काम आ रही है—इस विचारसे उसको जितना हर्ष हो रहा है, उसमें दुःखको तो वह कुछ समझता ही नहीं है।

परमात्मा दयालु हैं। जिसको चीज देनेमें दुःख होता दीखता है, उसकी चीजको भगवान् काममें नहीं लाते।

प्रह्लादने भगवान्की भक्तिका आश्रय पकड़ा था। भगवान्ने उसकी परीक्षा लेना शुरू कर दिया। भगवान् उसे कभी साँपसे कटाते हैं, कभी विष पिलाते हैं, कभी अग्निमें जलाते हैं—इस प्रकार पीड़ा-पर-पीड़ा देते हैं, परन्तु प्रह्लादने उस पीड़ाको पीड़ा माना ही नहीं।

आप भी भगवान्की शरण लेंगे तो आपको भी भगवान् तपा-तपाकर देखेंगे। तब जो भी बात होगी, उसीमें आपको हर्ष होगा। परीक्षाको परीक्षा समझनेके बाद फिर कष्ट होता ही नहीं।

भगवान् शरीरको जो भी कष्ट पहुँचा रहे हैं, उसको परीक्षा समझ लो फिर आपको कष्ट ही नहीं होगा। आजसे जितने कष्ट हों, उनको परीक्षा समझ लें—इस तरहसे तत्त्वको समझनेवाला प्रह्लाद होता है, द्रौपदी नहीं। वह तो कष्टके अवसरपर रो पड़ी थी।

भगवान्के अर्पण होनेके बाद जिसको जितनी आपत्ति आयेगी, उसको उतनी ही भगवान्की सम्पदाका दर्शन होगा। जितनी-जितनी सम्पदाका दर्शन होगा, उतना-उतना ही वह भगवान्के निकट पहुँचेगा, उसका आनन्द उतना ही बढ़ता जायगा, उसको चाहे जितना ही काटो, छाँटो।

एक वास्तविक घटना है—एक सेठके यहाँ एक मुनीम रहता था। सब काम वह मुनीम ही करता था, मालिकको कामके बारेमें कुछ भी मालूम नहीं था। जो मुनीम कहता, वही काम होता था, मालिकके कहनेकी कोई कीमत नहीं थी। एक बार सेठका भानजा आया, वह बहुत ही बुद्धिमान् था। मामाकी उसे दुकानपर रखनेकी इच्छा हुई, तब मामाने भानजेको कहा—तेरी दुकानपर रहनेकी और काम करनेकी इच्छा हो तो मुनीमजीकी प्रसन्नताके अनुसार काम कर। तू हमलोगोंका कहना नहीं सुनेगा तो कोई हर्ज नहीं है, पर मुनीमजीका कहना नहीं सुनेगा तो तुम्हारा दुकानपर रहना कठिन है। तुम्हें काम सीखना है तो उनकी खूब सेवा करके काम सीख ले।

यह बात सुनकर वह भानजा तन-मनसे मुनीमजीकी सेवा करने लग गया। जिस चीजकी मुनीमजीको आवश्यकता पड़ती, वह चीज पहलेसे ही तैयार कर देता। कभी-कभी मुनीमके पैर भी दबा देता। मुनीमका जो भी काम होता, वह सब कर देता।

साथमें दूकानका भी सब काम करता। काम करते-करते वह इतना होशियार हो गया कि सब काम जान गया, मुनीमजी नमूना मात्र रह गये। मुनीमजी एक महीनेकी छुट्टी लेकर अपने घर गये, पीछेसे उस भानजेने सब काम कर लिया। मुनीमजीकी किसी भी काममें आवश्यकता नहीं रही।

मुनीमजी वापस आये, तब भानजा छुट्टी लेकर घर गया। उसके पीछेसे कामका नुकसान हुआ तो भानजेको बुलाना पड़ा। तब मुनीमजीका वेतन घटा दिया गया और भानजेका दूकानमें हिस्सा डाल दिया, वही मालिक-जैसा हो गया।

इसी प्रकार परमात्माके अनुकूल बनकर उनका काम करे तो वह पुरुष मालिकका भी मालिक हो जाय। अपनेको उस परमात्माका सेवक बनना चाहिये। काम, क्रोध, लोभ, मोह—इनको रात-दित ठोक-पीटकर निकालना चाहिये। जितने भी कष्ट आयें, उन्हें सहन करते जाओ, हँस-हँसकर सहन करो। दो दु:ख आवें तो कहो कि हे भगवान्! चार आने दो। इस तरहसे चाहे कितनी ही आपत्ति आये, उनको सहन करते जाओ। चलते जाओ, बेड़ा पार है। पैर पीछे रखे कि मामला समाप्त।

इस प्रकार काम-क्रोधकी लड़ाईमें जो मार पड़ती है, उसको सह लेनेमें ज्यादा लाभ है, जीतनेमें थोड़ा लाभ है। भगवान्‌की मारमें खूब हर्ष होना चाहिये। महाभारतके युद्धमें जब भगवान् सुदर्शन चक्र लेकर आये तब भीष्म पितामहने कहा—आइये! आइये नाथ!! इसी उद्देश्यसे तो यह काम किया था।

कोई बालक किसी दूसरे बालकको मारकर फिर माँकी गोदमें बैठ जाता है, तब माँ उस बालकको दिखानेके लिये मारती है। उस समय वह बालक भीतरमें तो हँसता है और उस

बालकको दिखानेके लिये झूठे ही रोता है। ईश्वरकी मार माँकी मारकी तरह है। ईश्वर भीतरकी मार नहीं मार सकते। माँ मारती है, वह बच्चेके हितके लिये मारती है। उस माँमें अज्ञान है, परन्तु ईश्वरमें अज्ञान नहीं है। ईश्वर चाहे जितनी मार मारें, उसमें प्रसन्न ही होना चाहिये। भीष्म पितामह कह रहे हैं—हे नाथ! मैंने जितने पाप किये हैं, वे सब रोग-रूप होकर आ जायँ ताकि मैं उऋण हो जाऊँ।

कोई आपको कहे कि आपके सौ जन्मोंके जितने पाप किये हुए हैं, वे सब पाप मैं दस दिनमें भुगता दूँ, जैसे कोई कितना ही पापी हो वह काशीमें मरनेपर अधिक-से-अधिक छत्तीस हजार वर्षतक उसके पापोंका भोग भुगताकर मुक्त कर दिया जाता है। वही मुक्ति इसी जन्ममें मिल जाय तो कितना अधिक आनन्द हो!

ईश्वरकी मारमें बड़ा आनन्द है। उसके स्पर्शमें बड़ा आनन्द है। भगवान् जितनी मार मारें, उसमें कितना आनन्द आवे। ईश्वरकी बहुत अधिक दया हो गयी। भगवान् कहते हैं—मैं तेरा इस जन्ममें ही कल्याण करके छोड़ूँगा!

भक्त कहता है—आपकी इच्छा, कर दें! चाहे जितना कष्ट दें, मैं तैयार हूँ।

ईश्वरके साक्षात् दर्शनकी आशा है, वही आनन्द है। कोई भारी-से-भारी कष्ट सहनेको तैयार है तो ईश्वर उसको शीघ्र मिलनेके लिये तैयार हैं। ईश्वरने अपनेसे मिलनेका दिन निश्चित कर दिया, उसके लिये हम भारी-से-भारी कष्ट सहनेको भी तैयार हैं। शीघ्रातिशीघ्र जिस तरहसे भी वह मिलें।

मान लो कि किसी जगह एक हीरों और रत्नोंकी खान है।

किसी राजा, महाराजाके सम्पर्कसे किसी आदमीको यह आदेश मिल गया कि चार पहर (१२ घण्टों) में जितना ले जा सकते हो, उतना ले जाओ। उस व्यक्तिसे यदि दस सेर वजन चलता होगा तो वह बीस सेर ले जानेकी चेष्टा करेगा। उसको उठाकर दौड़ रहा है, कष्ट पा रहा है, फिर भी वह जल्दी-जल्दी भाग रहा है। दूसरे लोग उसे कह रहे हैं कि आपके पैर लँगड़ाते हैं। आप इतना क्यों दौड़ रहे हैं? उसका उत्तर वह यह देता है—कोई बात नहीं, पैर तो दो दिनमें ठीक हो जायेंगे। वह जल्दी-जल्दी भागा जाता है। क्लेश, पैरोंका कष्ट, लोगोंका ताना तथा निन्दा होनेपर भी उसका यह प्रयास रहता है कि संध्या समय-तक जितना ढो सकते हैं, उतना ढो लें किसीकी भी सुनो ही मत। जिसने अपनी सारी आयुमें पाव भर रत्न भी नहीं कमाये, उस आदमीको जितने उठाये जा सकें, उतने रत्नोंको उठानेका आदेश मिल जाय तो फिर वह रत्नोंको किस तरहसे छोड़े?

इस उदाहरणकी तुलनामें उस परमात्मामें लाखों गुणा आनन्द है।

जब-जब आपत्ति आवे, उस समय मानना चाहिये कि भगवान् परीक्षा ले रहे हैं। जो परीक्षामें पास हो जाय, उसको भगवान्के दर्शन होंगे।

प्रह्लादको इस विषयका ज्ञान था। वह आगमें बैठा है फिर भी हँस रहा है।

इसी तरह उस भक्तको ईश्वरसे मिलनेकी आशासे इतना हर्ष होता है कि उसे शारीरिक कष्ट मालूम ही नहीं देता है। जैसे किसी समय यहाँपर आँधी-वर्षा आती है, उस समय यदि वैराग्य धारण कर लें तो उस समय हमें आँधी-वर्षाका कष्ट नहीं

होगा। कष्टकी जगह हर्ष ही होगा। यह तो वैराग्यसे होनेवाले हर्षकी बात है, जहाँ भगवान्‌के आनेकी आशा ही नहीं है, फिर जहाँ भगवान्‌के आनेकी आशा हो वहाँ हर्ष होगा या कष्ट होगा? उसको कष्टका तो भान ही नहीं होता है। वही आँधी भगवान्‌से मिलनेकी भावना करनेसे सुखप्रद है और कष्टकी भावनासे ही कष्टदायक है। भावनासे ही वह आँधी आनन्द देनेवाली बन जाती है।

गुहारमलजीके उस दिन कष्ट अधिक था, परन्तु वे स्नान कर रहे थे और खिसककर चल रहे थे। उनके कितना हर्ष उत्पन्न हो रहा था! मामूली भावनाका यह फल है।

साक्षात् ईश्वरका दिया हुआ कष्ट! क्या ईश्वरके दर्शनमें कष्ट मालूम देता है, अपितु कितना हर्ष होता है!

घनश्यामके भाई मोहनका शरीर शान्त हुआ उस समयकी बात है—वह हँसते-हँसते प्राण दे रहा था। कष्ट कहाँ गया, कुछ मालूम ही नहीं। हर्षके कारणसे उसके चित्तकी वृत्तियाँ उस कष्टकी ओर जाती ही नहीं। उस हर्षका अनुमान कौन करे? जितना अधिक कष्ट होता है, उतना ही आनन्द अधिक बढ़ता है। ऐसे ही प्रह्लाद कहते हैं और कष्ट आने दो।

रुपयोंके सेवकको रुपयोंके लोभके लिये शरीरके कष्टका ध्यान नहीं रहता है, फिर ईश्वरकी सेवामें किस प्रकारसे कष्ट मालूम दे?

परमात्माकी प्राप्ति तो सुखसे बैठे-बैठे हो जाय। भजन-ध्यान करते-करते भगवान् मिल जायँ, इससे अधिक सस्ते और क्या मिलेंगे? आपलोगोंसे पत्थर थोड़े ही फुड़वाये जाते हैं? इसपर भी मन उकता रहा है कि यहाँसे चलो!

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

साधनमें खास बाधा—राग-द्वेष

सभी अपनी बात रखना चाहते हैं। जिसमें यह दोष हो, उसे सुधार करना चाहिये। सुधार भगवान्‌की कृपासे हो सकता है। मनुष्य यदि अपनी बात छोड़ दे तो सुधार हो सकता है।

यह मन्त्र पढ़ लो कि जो काम जिस प्रकारसे हो, उसीमें आनन्द मानना चाहिये। न अपनी बातका पक्ष ले, न किसी अन्यका पक्ष।

राग-द्वेष होनेका हेतु अहंकार है। हमलोग समझते हैं कि सोलह आना बुद्धि मेरेमें ही है। जिसमें जितना राग-द्वेष कम होगा, वह उतना ही भगवान्‌के निकट पहुँचेगा।

परमात्माकी प्राप्तिमें विलम्ब क्यों है?

—क्योंकि पक्षपात है, समता नहीं है। जो पक्षपात-रहित है, उसे महात्मा समझो।

आपसका मत भले ही न मिले, राग-द्वेषका नाश होना चाहिये। बिल्कुल आशा नहीं हो, तब भी मनुष्यको आशावादी बनना चाहिये। जबतक जीवन है तबतक आशा रखनी चाहिये।

सत्संगमें रहस्य और तत्त्वकी बातें, जो पाँच वर्ष पहले कही जाती थीं, वह तीन वर्ष पहले कम कही गयीं, एक वर्ष पहले उससे कम कही गयी, अब उससे भी कम कही गयी, क्योंकि मेरे बात उपजती ही नहीं है। जो उपजती है, उसको कहनेमें हिचक होती है।

क्यों होती है?

—मैं यदि आपको यह कहूँ कि आप मेरे मनके अनुसार चलें। उस प्रकारसे चलनेपर यदि मैं दावा करके कहूँ कि आपको निश्चित रूपसे परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है—तो यह

प्रवचन दिनांक—१८-१२-१९४५, गोरखपुर।

मैं नहीं कह सकता हूँ। ऐसा कहनेमें मैं मेरा पतन समझता हूँ, क्योंकि न तो मैं ऐसा महापुरुष हूँ, न मेरे हाथमें अधिकार है, किन्तु मैं यह सिद्धान्त मानता हूँ कि आप यदि मान लें तो आपका कल्याण हो जाय, इसमें संशय नहीं है। यह मेरी सामर्थ्यका फल नहीं है, आपकी श्रद्धाका फल है।

मेरे सामर्थ्यकी क्या बात है? स्वामीजी कहते हैं कि मुझे भगवान्‌की प्राप्ति नहीं हुई, किन्तु यदि किसीको श्रद्धा हो जाय कि ये परमात्माकी प्राप्ति करा सकते हैं तो उसको परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है, इनको मत हो।

श्रद्धाकी बात छोड़कर दूसरी बात कहता हूँ।

मैं तो वही हूँ, आप भी वही हैं, फिर किस बातकी कमी आयी? दो ही बातकी कमी आ सकती है। या तो मेरी पात्रतामें कमी आ सकती है या आपलोगोंकी पात्रतामें। किसमें कमी आयी, यह तो परमात्मा ही जानें, किन्तु नीति यही कहती है कि मुझे अपनेमें ही कमी माननी चाहिये, आपलोगोंको अपनेमें। वास्तवमें इस तरहकी मान्यतासे ही सुधार हो सकता है। आपलोग मेरेमें कमी मानें, मैं आपलोगोंमें कमी मानूँ तो इससे न तो आपलोगोंका हित है, न मेरा और न संसारका हित है।

क्या गलती है, क्यों गलती है—इसकी हर एक भाईको खोज करनी चाहिये। खोज करके सुधार करना चाहिये। दूसरेकी गलती प्रतीत हो तो उसे अपने मनसे हटानी चाहिये। अपनी गलती हट जायगी तो दूसरेकी गलती स्वतः ही हट जायगी।

मनुष्यमें नीयतका ही दोष सबसे अधिक समझा जाता है। यह नीयतका दोष हम सबमें ही है, किन्तु किसीकी नीयतमें दोष प्रतीत हो तो उसकी नीयतमें दोष है—यह बात कायम नहीं

करनी चाहिये। यदि उसकी समझमें आ गयी कि आप उसकी नीयतमें दोष मान रहे हैं, फिर सुधार होना कठिन है। दूसरेका दोष माननेमें आपकी भूल भी हो सकती है, क्योंकि आप सर्वज्ञ नहीं हैं। इतनेपर भी आपका मन यदि नहीं माने, तब भी उसकी नीयतमें दोष है—यह नहीं कहना चाहिये।

अपना व्यवहार श्रद्धाको छोड़कर कायदेके अनुसार कार्यमें लाया जाय तो उससे अधिक सुधार हो सकता है।

प्रेमका परिणाम यह नहीं होना चाहिये कि अपना स्तर गिर जाय। यह प्रेम नहीं, यह तो उद्दण्डता है। यदि वास्तवमें प्रेम हो तो प्रेमीको प्रसन्न करना चाहिये। अवहेलना तो वहींपर होगी, जब हम उसे महत्त्वपूर्ण नहीं समझेंगे।

आपलोग जो कर रहे हैं, यह बहुत अच्छा है, ऐसा करते हुए परस्परमें खूब प्रेम बढ़े, वह अच्छा ही है। परमात्माके लिये आपसमें प्रेम बढ़े, वह प्रेम ईश्वरमें ही है। अपना वह प्रेम यदि विशुद्ध हो तो वह प्रेम ईश्वर-प्राप्तिमें विशेष सहायक हो सकता है, श्रद्धाकी कोई आवश्यकता नहीं। मैं तो इस बातको माननेवाला हूँ कि आपसके प्रेमसे ही परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है, श्रद्धा चाहे मत हो।

नियमानुसार काम करनेसे कार्य सुचारु रूपसे चल सकता है, किन्तु उसका फल परमात्माकी प्राप्ति नहीं है। हमलोग परस्परमें प्रेमका व्यवहार करें तो उसका दर्जा बहुत ऊँचा है। वह प्रेम निष्काम होना चाहिये। मेरे साथमें तो आपलोगोंका बहुत अच्छा प्रेम और भाव है, किन्तु मेरी ओरका लाभ भी आपको होना चाहिये, उसकी मैं कमी देख रहा हूँ। मैं यही समझ रहा हूँ कि मेरी योग्यता नहीं है। मेरी योग्यता हो तो भी मुझे अपनेमें कमी ही देखनी चाहिये।

हमारेमें सहनशक्ति नहीं है, यह दोष है। अहंकार है, यह

भी दोष है। मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाकी इच्छा है, यह भी दोष है।

एक दूसरेकी महत्ता देखें, एक दूसरेकी बातको आदर देवें तो उसका क्या स्वरूप आयेगा। मेरे यह बात काममें लायी हुई है। मैंने अपनी भूल मानी, उसने अपनी भूल मानी तो वहाँ सुधार ही देखा।

सामनेवालेकी शरण हो जाय और कहे कि बोल! तू क्या चाहता है?

हम सब अपना सुधार चाहते हैं, फिर भी सुधार नहीं हो रहा है। सबसे बढ़कर यही बात है कि अपने स्वार्थका त्याग करना चाहिये। यदि दूसरा भाई हमारा दोष बताये तो हमें अपना दोष स्वीकार कर लेना चाहिये। इस बातसे बहुत लाभ है। झूठ भी नहीं है। इस जगह यदि हम यह कहें कि हमारा दोष नहीं है तो यह कहना ठीक नहीं है, दोष मान लेना ठीक है।

यदि मैं किसीको आपके दो अवगुण बताऊँ, आप अपने चार अवगुण बतायें, तब तो ठीक है।

ईश्वरके ऊपर भरोसा रखें—ईश्वरके राज्यमें हमें दोषी नहीं होना चाहिये। किसीको अपने दोषी नहीं होनेका प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है। मौन होकर ईश्वरका न्याय देखना चाहिये। यदि दोषी नहीं होनेका प्रमाण देते हैं तो ईश्वरपर निर्भरताकी कमी है। सच्चे मनुष्यको घबड़ानेकी कोई आवश्यकता नहीं है, बल्कि यह समझना चाहिये कि सफाई देना लज्जाकी बात है। यदि मैं सच्चा हूँ तो भगवान् आकर सफाई देंगे। इससे भी ऊँचा दर्जा है कि सफाईकी इच्छा भी नहीं रखे। न्याय चाहनेकी अपेक्षा अपने ऊपर अन्याय हो, उसको सह लेना और भी उत्तम है। इस प्रकार हमें वास्तवमें अपना सुधार करना चाहिये। कोई हममें एक दोष बताये तो अपने दो स्वीकार करें। वह कहे—तुम्हारेमें

लोभका दोष है तो कहें—लोभका ही नहीं, कामका भी दोष है, आपको मालूम नहीं है?

मैंने जो यह बात कही है, यदि उसके अनुसार साधन करो तो जितने वर्ष आपने साधन किया है, उतने महीने भी नहीं लगेंगे और परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी—यह बात लिखकर रख लो।

और एक बात कि आपसका व्यवहार ठीक हो जाय, उत्तरोत्तर आपकी उन्नति हो, यह मेरा उद्देश्य है; आप भी समझते ही हैं, मेरा कोई भी ध्येय मान लो।

मैं आपलोगोंको समझाता हूँ कि स्वार्थ सिद्धिके रास्तेपर जाओ ही मत। आपको कोई आपके लाभकी बात बतलाये उसे आप अपना मित्र समझें।

एक तो स्वार्थका त्याग स्वार्थके लिये किया जाता है और एक स्वार्थका त्याग परमार्थके लिये किया जाता है। मेरा यह विश्वास है कि स्वार्थके त्यागसे दोनों ही सिद्ध होते हैं।

आप यहाँ जो पन्द्रह व्यक्ति बैठे हैं, ऐसे पन्द्रह व्यक्ति हमें जुटा दें, आपको एक लाख रुपया पुरस्कार स्वरूप देंगे।

आपलोगोंसे बाहर दृष्टि जानेमें हम इससे भी ज्यादा अंधकार देखते हैं। यदि ऐसी बात नहीं होती तो भाईजी त्यागपत्र देनेकी बात कहते हैं, मैं उनसे भी पहले त्यागपत्र दे देता।

मैं घनश्यामको कभी-कभी उलाहना भी दे देता हूँ, पर मुझे घनश्याम जैसा आदमी नहीं मिलता है और घनश्यामको मेरे जैसा। यदि घनश्याम अपने व्यवहारसे मुझे सन्तोष करा देता तो मैं घनश्यामको भगवान्‌की प्राप्ति करा देता।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

भावके अनुसार स्थिति

ऐसा कोई भी नियम नहीं है कि किस समय कैसी बात हो। यदि मनुष्य सभी बातोंको उत्तम समझे तो उसकी यह दृष्टि ऊँची ही है। उसकी तो परीक्षा हो गयी। गोपियोंके कभी नीचे दर्जेकी बातें पल्ले नहीं पड़ती थी। जिसकी जैसी स्थिति होती है उसको उसी स्तरकी बातें पल्ले पड़ती है।

आपलोग कहते हैं हमलोगोंकी आपसमें श्रद्धा किस तरह हो? इसके दो उपाय हैं—(१) आप योग्य बनें। (२) श्रद्धाका उपाय पूछें कि श्रद्धाका उपाय बतायें? क्या करनेसे श्रद्धा उत्पन्न हो?

आपमें कमी समझकर भी यह बात कही जा सकती है। आगेवालेमें भी कमी समझकर यह बात कही जा सकती है। आगेवालेका मान रखकर कहना है।

स्वामीजी—'इसका भाव अच्छी तरहसे नहीं खुला?'

सेठजी—आपलोगोंसे डरता हूँ—

बिप्रबंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई॥

(रा० च० मा०, बालकाण्ड, २८४। ५)

परमात्माके साथ उदाहरण या दृष्टान्त देना हो तो महात्माका ही देना चाहिये। दूसरा नहीं मिलता। महात्माका उदाहरण देना हो तो परमात्माका ही देना चाहिये; जैसे—गौ, ब्राह्मण एक हैं। गौको तो ज्ञान नहीं, अन्यथा गौकी दृष्टिमें ब्राह्मण श्रेष्ठ होते और ब्राह्मणकी दृष्टिमें गौ श्रेष्ठ होती, पर अब यही कहा जाता है कि दोनों बराबर हैं।

प्रवचन दिनांक—१८-१२-१९४५, गोरखपुर।

च्यवन ऋषिके प्रसंगमें राजाने अपना सारा राज्य रख दिया, पर उनका मूल्य नहीं आया। ऋषि अपनी बड़ाई स्वयं ही करते हैं कि मेरा मूल्य नहीं आया। राज्यको उन्होंने क्या महत्त्व दिया? तब वहाँ जो दूसरे ऋषि उपस्थित थे, उनसे पूछा गया कि इनका मूल्य क्या है? उन्होंने कहा—एक गौ रख दो। तब च्यवन ऋषिने कहा—अब हमारा मूल्य आ गया। उस राज्यसे लाख गायें खरीदी जा सकती थीं, पर उससे उनका मूल्य नहीं आया। गौ रख दी, तब मूल्य आ गया। गौ और ब्राह्मण अमोलक वस्तु हैं। जो उनका मूल्य करे वह मूर्ख है, इसलिये गौको बेचना पाप है।

साधुओंका, ईश्वरका एक मत है। अभीतक साधुओंका संसारमें मान है। असलीका तो है ही, नकलीका भी है। वेषका भी मान है। गेरुआ कपड़ा पहनकर कोई आ जाय, अभीतक तो मान है। जबकि अच्छे साधु सौमेंसे दस ही मिलेंगे। अच्छेसे तात्पर्य साधारण अच्छे—साधक साधु-अपना साधन करने-वाला। महात्मा नहीं, साधककी बात है, पर दिन-दिन यह काम छूट रहा है। जैसे-जैसे साधुओंमें साधुपना घटता जा रहा है, वैसे-वैसे भक्तोंमें भी श्रद्धा घटती जा रही है।

संसारमें जो झूठे साधु बने हैं—चाहे वेषसे हों, या गृहस्थ होकर भी झूठे ही साधु कहलाते हैं, वे नास्तिकताका प्रचार करते हैं। संसारमें जो धर्मध्वजी हैं, वे पक्के नास्तिक हैं, उनसे ही नास्तिकताका प्रचार होता है। उनका नाश करनेके लिये भगवान् अवतार लेते हैं।

क्या बतायें? संसारमें सुधार हो या उद्धार हो? नीति तो यह है कि सुधार होनेसे ही उद्धार होता है। पहले उद्धार लायें

कहाँसे ? पहले उद्धार होता तो अपनी दाल गलती, अर्थात् अपना भी काम बन जाता।

भगवान्‌का नाम दीनबन्धु आया है, समदर्शी, प्रेमी, पतितपावन आया है, पर कहीं भी अकर्मण्य-पावन, अकर्मण्य-सखा नहीं आया है।

निकम्मापन छोड़ो। निकम्मापन छोड़ना मामूली बात है। परिश्रम किया कि निकम्मापन गया।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

पहले अपने दोष दूर करो

प्रश्न—दोष-दृष्टि कैसे दूर हो?

उत्तर—यह समझ लें कि किसीमें भी दोष-दृष्टि करनेसे हमारी ही हानि है। जो दोषी है, उसका पतन तो हो चुका, किन्तु जो उसमें दोष-दृष्टि करता है, उसका भी पतन हो सकता है। दोष दलदलकी तरह है, इसमें फँसे ही नहीं। मनको समझावे इसमें तुम्हें क्या लाभ है? हम यदि किसीके दोष बतलावें तो कौन-से उसके दोष निकल जायँगे? दोष तो तभी निकलेंगे, जब वह स्वयं चाहेगा।

अपने दोष दूर करो; दूसरोंके दोषोंकी चिन्ता छोड़ो। दूसरोंके दोष दूर करनेके लिये भी पहले अपने दोष दूर करने चाहिये।

मुझे आजतक ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिला कि उसके दोष उसके हितके लिये बतायें तो वह प्रसन्न हो।

संसारमें कोई भी यदि हमें हमारा दोष बताये और हम सुनकर प्रसन्न हों तो वे दोष रह नहीं सकते।

काम-क्रोध आदि हमारे हृदयमें डाकू हैं। इन दोषोंका हम पोषण करते हैं। कबीरदासजी कहते हैं—निन्दा करनेवालेको कुटी छवाकर पड़ोसमें बसाना चाहिये, किन्तु हमारी यदि कोई निन्दा करे तो हम उसे लाठी मारनेको तैयार हैं।

किसी आदमीने हमपर झूठा दोष लगा दिया तो हमें कोई हानि नहीं है। मेरे ऊपर कोई झूठा दोष लगा देता है तो मैं यही सोचता हूँ कि इसमें हमारी क्या हानि है?

यदि कोई हमारी सच्ची निन्दा करता है तो हमें सावधान

प्रवचन दिनांक—२०-१२-१९४५, प्रात:काल, गीताप्रेस, गोरखपुर।

होना चाहिये और उस दोषको निकालना चाहिये।

ईश्वर सर्वान्तर्यामी हैं। यदि दुनिया मुझे बेईमान बताये, झूठा बताये और मैं सच्चा हूँ तो लोगोंके कहनेका क्या मूल्य है? यदि मैं दोषी हूँ तो लोगोंके प्रमाणपत्रका भी ईश्वरके दरबारमें क्या मूल्य है?

संसारकी निन्दा-स्तुति मेंढकके शब्दकी तरह है। मेढक टर्र-टर्र करता है, उससे क्या हानि-लाभ है? कोई भी हमारेमें दोष आरोपित करता है तो हमें उस दोषको निकालना चाहिये। यदि हमारेमें दोष नहीं है, फिर भी लोग निन्दा करते हैं तो उससे हमें क्या हानि है?

हम नहीं चाहते कि कोई हमारी अपकीर्ति करे, निन्दा करे। प्रशंसा करे, सत्कार करे ऐसा तो सभी चाहते हैं। कुत्तेका भी सत्कार करें तो वह पूँछ हिलाता है।

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा अमृतके समान और निन्दा, तिरस्कार विषके समान—ऐसा सभीको लगता है, किन्तु परमात्माकी प्राप्तिका मामला इससे बिल्कुल उलटा है।

थोड़ी देरके लिये मान लो—मान, बड़ाई, कीर्ति इस किनारे तथा अपमान, तिरस्कार, अपकीर्ति उस किनारे है। हम यह चाहते हैं कि इस किनारेकी चीज इस किनारे रहे, उस किनारेकी उस किनारे रहे—यह बात सदासे ही है। हमें खूब जोर लगाना चाहिये कि उस किनारेकी चीज इस किनारे आ जाय और इस किनारेकी उस किनारे चली जाय, तभी हम समतामें ठहरेंगे। मान, बड़ाईको विषके समान और निन्दा, स्तुतिको अमृतके समान समझेंगे तो समतामें स्थित होंगे।

हमारी कोई स्तुति करता है तो हम फूल जाते हैं—यह

खतरनाक चीज है, गलेमें पत्थर बाँधकर डूबना है।

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाका बड़ा भारी बोझा है। इनका पत्थर गलेमें बाँध लेनेसे यह रसातलमें ले जाता है—

हल्के-हल्के तिर गये, डूबे जाँ सिर भार।

निरहंकारता, विनय—यह हल्कापन है और अहंकार, अविनय यह पत्थर है।

जो मनुष्य सबके चरणोंकी धूलि होकर रहता है, वह सबका सरदार रहता है। जो सबका सरदार बनकर रहता है, वह सबके चरणोंकी धूलि बन जाता है।

गौरांग महाप्रभुने कहा—मैं तीन ही बात जानता हूँ—नामे रुचि, जीवे दया और वैष्णव सेवा। हमलोगोंने इन तीनका छः बना लिया—भजन और ध्यान, सत्संग और स्वाध्याय, दुःखियोंकी सेवा तथा मन और इन्द्रियोंका संयम। ये छहों चीजें बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं।

काम इन चारसे भी चल जाय और अज्ञानका नाश हो जाय—

संयम, सेवा, साधना, सत्पुरुषोंका संग।
इन चारोंके साथ से मोह होवे भंग॥

मन, इन्द्रियोंका संयम करे, इनको विषयोंसे रोके। साधना यानी जप और ध्यान।

उपरोक्तमें चार ‘स’-कार हैं। इसी प्रकारसे पाँच ‘ग’-कार भी हैं—

गौ, गीता, गंगा, गायत्री अरु गोविन्दका नाम।
इन पाँचों की शरण से, पूर्ण हो जाय काम॥

दस चीजके सेवनसे आत्माका कल्याण हो जाय—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(मनुस्मृति ६।९२)

धृति (धैर्य), क्षमा, मनको नियन्त्रणमें रखना, चोरी-ठगी न करना, बाहर-भीतरकी शुद्धि, इन्द्रियोंको वशमें रखना, बुद्धिको सात्त्विक बनाना, विद्या (जिससे परमात्माका यथार्थ अनुभव हो, ऐसा सात्त्विक ज्ञान प्राप्त करना), सत्य कहना और अक्रोध— ये दस धर्मके लक्षण हैं।

दूसरे दस-यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इनका नाम यम है) और नियम (पवित्रता, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान—ये पाँच नियम हैं)। चाहे वे दस कर लो, चाहे ये दस कर लो। इनसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

ये दस न हों तो नौ कर लो। नवधा भक्ति—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(श्रीमद्भागवत ७।५।२३)

विष्णु भगवान्‌की भक्तिके नौ भेद हैं—भगवान्‌के गुण-लीला-नाम आदिका स्मरण, उनके चरणोंकी सेवा, पूजा-अर्चा, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।

यदि नौ नहीं कर सको तो आठ करो—अष्टांग योगका पालन करो—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

आठ नहीं हो सकें तो सात कर लो—ज्ञानकी सात भूमिकाएँ।

सात नहीं कर सकें तो छः करें—ब्राह्मणोंके लिये—ब्राह्मणके

षट्कर्म बताये गये हैं। क्षत्रियोंके कर्म इस प्रकार हैं—

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥

(गीता १८। ४३)

शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्धमें न भागना, दान देना और स्वामिभाव—ये सब-के-सब ही क्षत्रियके स्वाभाविक कर्म हैं।

वैश्यके लिये विहित कर्म यज्ञ करना, दान देना, विद्या पढ़ना, कृषि करना, गोपालन और व्यापार हैं।

शूद्रके लिये विहित कर्म सेवा, जप, ध्यान, मनको वशमें करना, सत्संग, इन्द्रियोंका संयम है।

चार ('स'-कारका) एवं पाँच ('ग'-कारका) साधन पहले बताया गया ही है।

चार नहीं हो सकें तो तीन ही कर लो—तीनसे भी काम चल जायगा—भजन, ध्यान और सत्संग।

तीन नहीं कर सको तो दो कर लो—भजन और सत्संग।

दो नहीं हो सकें तो एक ही कर लो—ईश्वरकी शरण-

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८। ६२)

हे भारत! तू सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही शरणमें जा। उस परमात्माकी कृपासे ही तू परम शान्तिको तथा सनातन परम धामको प्राप्त होगा।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम्॥

(श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्र, श्लोक १३०)

जो मनुष्य वासुदेवके आश्रित और उनके परायण है, वह समस्त पापोंसे छूटकर विशुद्ध अन्तःकरणवाला हो सनातन परब्रह्मको पाता है।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७। १४)

क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परंतु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं वे इस मायाको उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।

केवल ज्ञान, केवल ध्यान और केवल प्रेमसे भी परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है।

ग्यारह पदार्थ ऐसे हैं, उनका आप सेवन करें तो आपका ही नहीं, आप चाहें तो सारे संसारका उद्धार कर सकते हैं। ग्यारह पदार्थ ये हैं—परमात्मामें प्रेम और श्रद्धा, जप और ध्यान, उपरति और वैराग्य, गुण और प्रभाव, भगवान्‌की महिमा, लीला और धाम—इनका सेवन करे तो परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। समता, शान्ति और आनन्दकी उसमें बाढ़ आ जाती है।

प्रश्न—उपरति किसे कहते हैं?

उत्तर—संसारको अत्यन्त भुला देना—यह उपरति है। संसारसे प्रीति हटानी और परमात्मासे प्रेम करना—यह वैराग्य है।

ये ग्यारह पदार्थ खूब उच्चकोटिके हैं। शास्त्रोंमें, महात्माओंने एक-से-एक बढ़कर बातें कही हैं, आपकी जो इच्छा हो, चुन लें। सभी मुक्तिको देनेवाली हैं।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥

(गीता १३। १४)

वह सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है, परन्तु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित है, तथा आसक्तिरहित होनेपर भी सबका धारण-पोषण करनेवाला और निर्गुण होनेपर भी गुणोंको भोगनेवाला है।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

(गीता ४। २४)

जिस यज्ञमें अर्पण अर्थात् स्रुवा आदि भी ब्रह्म है और हवन किये जानेयोग्य द्रव्य भी ब्रह्म है तथा ब्रह्मरूप कर्ताके द्वारा ब्रह्मरूप अग्निमें आहुति देनारूप क्रिया भी ब्रह्म है—उस ब्रह्मकर्ममें स्थित रहनेवाले योगीद्वारा प्राप्त किये जानेयोग्य फल भी ब्रह्म ही है।

यह ब्रह्मयज्ञ है। कितने ही देवयज्ञ करते हैं, कितने ही इन्द्रियसंयम रूप यज्ञ करते हैं, कितने ही प्राणायाम-रूपी यज्ञ करते हैं।

भगवान् कहते हैं—सारे ही साधन मुझे प्राप्त करानेवाले हैं।

महर्षि पतञ्जलिने अनेक साधन बताये हैं। कोई भी एक साधन कर लें तो उससे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। सारे साधन दो निष्ठाओंके अन्तर्गत आ जाते हैं—सांख्यनिष्ठा और योगनिष्ठा; अर्थात् ज्ञानयोग और भक्तियोग।

ज्ञान और भक्तिके भी कई भेद हैं। भक्ति मार्गमें मुख्य है—शरणागति। ज्ञानके मार्गमें अजातवाद है—एक परमात्माके सिवाय अन्य कोई वस्तु नहीं है।

हमें दोनों मार्ग अच्छे लगते हैं, कोई बड़ा, छोटा नहीं है। अधिकांश मनुष्य इस समय भक्तिके अधिकारी हैं, इसलिये भक्तिकी चर्चा अधिक की जाती है। ज्ञानकी चर्चा पुस्तकोंमें तो देखी हुई ही है। जिन्हें अनुभव है, उन्हें हम प्रणाम करते हैं।

प्रश्न—भक्ति कैसे करनी चाहिये?

उत्तर—मछली जैसे जलके शरणापन्न है, ऐसे ही भगवान्‌के शरण होना चाहिये। पपीहा स्वाति बूँदको छोड़कर दूसरा पानी छूता ही नहीं, इस तरह एकके परायण हो जाय। पतिव्रता स्त्री जैसे पतिके परायण रहती है, इसी तरह परमात्माके परायण रहे। उदाहरण मिलता है—बलिका। उन्होंने अपने मस्तकपर भगवान्‌का चरण रखवाया। बलि भगवान्‌के शरण हो गये। उन्होंने अहंता, ममता सब कुछ भगवान्‌के समर्पण कर दी। जयन्त त्रिलोकीमें घूम आया, कहीं जगह नहीं मिली, आखिर भगवान्‌के शरण आया, तब शान्ति मिली। विभीषण भगवान्‌के शरण आये। इस तरह शरणके अनेक उदाहरण मिलते हैं। अर्जुन आखिर भगवान्‌के शरण ही हुए।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्ध्वा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

(गीता १८। ७३)

हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है, अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ, अतः आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

शरणागतका और उदाहरण है—कठपुतलीका। वह जिस तरह सब कुछ समर्पण किये हुए सूत्रधारके अधीन रहती है, इसी तरह भगवान्‌की शरण होना चाहिये। केवल एक शरणसे ही कल्याण हो जाता है। आपलोगोंको कई शास्त्रोंकी बातें कही, कई साधन बतलाये।

भरतजीमें प्रेम तो था ही, वे सारे गुणोंके शिरोमणि थे। नवधा भक्ति उनके रोम-रोममें रमी हुई थी।

जितने गुण संसारमें हैं, उनका सेवन करना चाहिये और जितने अवगुण हैं, उनका त्याग कर देना चाहिये। भगवान्‌की भक्ति और प्रेम जब हृदयमें प्रकट हो जाता है तो सारे गुण स्वतः ही आकर इकट्ठे हो जाते हैं। जैसे जल स्वाभाविक ही नीचेकी ओर जाता है, इसी प्रकार जिसमें भक्ति होती है, विनय आदि सारे गुण उसमें आ जाते हैं।

सारे सद्‌गुणोंका खजाना बनना चाहिये। जिसमें भगवान्‌के सारे गुण आकर प्राप्त हो गये, वही भगवान्‌का अनुयायी है। भक्ति करनेसे सारे गुण स्वतः ही आ जाते हैं।

भगवान्‌को मन, बुद्धि और वाणीसे पकड़ लेना चाहिये। बुद्धिसे पकड़ना यह है कि भगवान् हैं यह दृढ़ निश्चय रखना और जो कुछ भी वे करें, उसमें प्रसन्न रहना। उनका ध्यान करना ही उनको मनसे पकड़ना है। नामका जप, कीर्तन करना—यह वाणीसे पकड़ना है। पुकार लगावे—‘हे नाथ! हे नाथ!!’

भगवान्‌की सेवा करना, पूजा करना, आज्ञाका पालन करना,

साष्टांग प्रणाम करना—यह शरीरसे भगवान्‌को पकड़ना है। इस प्रकार सब तरहसे भगवान्‌की शरण होना चाहिये। भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

(गीता १८। ६५)

मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥

(गीता १८। ५७)

सब कर्मोंको मनसे मुझमें अर्पण करके तथा समबुद्धिरूप योगको अवलम्बन करके मेरे परायण और निरन्तर मुझमें चित्तवाला हो।

सारे कर्म मेरेमें समर्पण कर दे, इससे इन्द्रियाँ समर्पण हुई।

मत्परः–मेरी शरण आ जा–इससे शरीरका समर्पण है।

बुद्धियोगमुपाश्रित्य–इससे बुद्धिका समर्पण है।

मच्चित्तः–इससे मनका समर्पण है।

—इस प्रकार यह सार बात है।

और भी सार बात बतायी जाती है। विनयभावकी वृद्धिके लिये अपनेसे जो बड़े हों, उनको नमस्कार करना चाहिये। इससे अहंकार तथा अभिमानका नाश होता है, अन्तःकरण शुद्ध होता है। सकामभावकी ओर खयाल करें तो आयु, बुद्धि, बलकी वृद्धि होती है। इसमें समय कम लगता है, पैसे भी खर्च नहीं होते, परिश्रम भी नहीं है, लाभ बड़ा भारी होता है। यह मनुष्योंके लिये एक सार चीज है। प्रणाम करनेसे बहुत लाभ होता है।

एक दूसरी सार बात है, इसमें कुछ परिश्रम है। वह है—सबको नारायण समझकर सबकी सेवा करना। इसमें परिश्रम तो है, किन्तु सबको नारायण समझकर सेवा करनेसे वह परिश्रम मालूम नहीं देता।

एक भाईने पूछा था कि भगवान्‌के दर्शन किस तरहसे शीघ्र होते हैं। मैंने कहा था कि आतुर अर्थात् दुःखीकी नारायण समझकर सेवा करनेसे भगवान् शीघ्र प्रकट हो जाते हैं। भगवान्‌के शीघ्र प्रकट होनेके दो स्थान हैं—एक महात्मा, दूसरा आतुर। महात्मा तो मिलते नहीं, उनको पहचानना कठिन है। आतुर पुरुष जगह-जगह मिल जाते हैं। उनमें भगवद्-भाव करके सेवा की जाय तो भगवान् बहुत शीघ्र प्रकट हो जाते हैं। भगवान् वहाँ रुक नहीं सकते। आप कहें कि यह कठिन है?'

क्या कोई पहाड़ उठाना है? इसमें कोई कठिन बात है ही नहीं। तुम्हारी मूर्खतासे कठिन बात दीखती है। नामदेवजीकी बात देखो—कुत्ता रोटी लेकर भागा तो घीकी कटोरी लेकर भागे। कहा—महाराज! चुपड़ने तो दो। कुत्तेमें ही भगवान् प्रकट हो गये।

उनके घरमें आग लगी तो जो चीज बची थी, वह भी

अग्निमें होम करने लगे कि प्रभु इसका भी भोग लगाइये। भगवान् अग्निमें प्रकट हो गये। भगवान् कैसे रुक सकते थे?

एकनाथजी महाराज रामेश्वरम्को जल चढ़ानेके लिये गंगोत्रीसे जल लेकर चले। जब तीन-चौथाई रास्ता तय हो गया तो रास्तेमें देखते हैं—एक गधा प्याससे तड़प रहा है। उसे इस प्रकारसे तड़पते देखकर उनका उस गधेमें भगवद्भाव हो गया कि ये साक्षात् शिवशंकर हैं। उन्होंने अपने काँवड़का जल गधेको पिला दिया। साक्षात् शंकर भगवान् उस गधेसे प्रकट हो गये।

ऐसे ही रन्तिदेवकी कथा आती है। भोजन किये अड़तालीस दिन हो गये। उनचासवें दिन कुछ हलवा, खीर, पूड़ी आदि प्राप्त हुए। पूजा-पाठ करके भोग लगाना ही चाहते थे कि इतनेमें एक ब्राह्मण आ गये। उन्हें भोजन कराया। इतनमें एक शूद्र आ गया, उसको भोजन कराया। फिर एक चाण्डाल आ गया, उसे भोजन कराया। जो कुछ भोजन था, वह उन सबने खा लिया। अब थोड़ा-सा जल बचा। राजा पीना ही चाहते थे कि इतनेमें एक चाण्डाल आ गया। कहा—मैं प्यासा हूँ। राजाने वह जल उसे पिला दिया। बस, भगवान् प्रकट हो गये। भगवान् इस तरह परीक्षा लेनेके लिये आते हैं।

हमें सबको भगवान् समझकर सबकी सेवा करनी चाहिये, सबको नमस्कार करना चाहिये—यह शास्त्रोंका सिद्धान्त है।

गीता देखो, रामायण देखो, भागवत देखो, सबका यही सिद्धान्त है कि सबमें भगवद्बुद्धि करनी चाहिये, यह सब उपदेशका सार है।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

सेवाकी महिमा

ऊँची जातिवाले नीची जातिकी सेवा कर सकते हैं, बल्कि नीची जातिकी सेवा करना और भी अधिक महत्त्वका है। गधे, कुत्तेकी सेवा भी करनी चाहिये। एकनाथजीने गधेको जल पिलाना रामेश्वरम्में जल चढ़ानेसे भी बढ़कर उत्तम समझा।

बीमार आदमीकी सेवा करनेसे बीमारी हो जायगी, इस भयसे सेवाका त्याग न करे। प्रारब्धमें होगा तभी बीमारी होगी। बीमारी हो जाय और प्राण भी चले जायँ तो उत्तम है। धर्मके लिये गुरु गोविन्द सिंहके पुत्रोंने प्राण दे दिये। मृत्युभय निश्चित होनेपर भी धर्मपर ही आरूढ़ रहे। बीमारीमें तो मरनेका निश्चय नहीं है।

एक बार हमारे गाँवमें प्लेगकी बीमारी हुई थी। बहुत-से लोग अपने घरसे कफनका कपड़ा या पिण्डके लिये आटा नहीं देते, इसे अशुभ मानते हैं। मुझे वहम नहीं आता है, कफन भी घरसे दे देते हैं, पिण्डके लिये भी आटा दे देते हैं। इसमें तो धर्मका काम है। सावधानीके साथ सेवा करे। जैसे कहीं आग लग जाय तो अपने नहीं लगे और बचानेकी चेष्टा करे। जानकर न मरे। अपनी रक्षा करते हुए मृत्यु हो जाय तो उसे भगवान्का पुरस्कार समझना चाहिये।

सेवा करनेमें मृत्यु हो जाय तो उसमें कल्याण समझे। मृत्यु आती हो तो उसे अपने लिये निमन्त्रण दे। जैसे चोरीका भय दिखलानेसे तथा खानेकी चीजोंका परिणाम दिखलानेसे सावधान हो जाते हैं, इसी प्रकार साधनके सम्बन्धमें सावधान हो जाना चाहिये। भगवान्ने गीतामें जगह-जगह भगवत्प्राप्ति शीघ्र होनेका उपाय बतलाया है। भगवान् और महात्मा झूठा आश्वासन नहीं देते हैं। ठग धोखा दे सकते हैं।

भाव बदलनेसे संसार परमात्माके रूपमें दिखने लग जाता है

प्रश्न—कहा जाता है कि महापुरुषोंके सिद्धान्तके अनुसार करे। महापुरुषोंका सिद्धान्त क्या है?

उत्तर—जैसे भगवान्‌का सिद्धान्त गीतामें लिखा हुआ है, वैसे ही तुलसीदासजीका सिद्धान्त उनके ग्रन्थोंमें है। जितने महापुरुष हुए हैं, उनका सिद्धान्त उनकी रची हुई पुस्तकोंमें है। पुस्तकोंमें जो बात है, वही उनका सिद्धान्त है। जितने आचार्य हुए हैं, उनकी रची हुई, लिखी हुई पुस्तकोंसे ही उनके सिद्धान्तका निर्णय होता है। उनकी मान्यता बहुत-सी उनके लेखोंमें आ जाती है। उनकी जो मान्यता है, उसीके अनुसार करना चाहिये। वही उनका सिद्धान्त है।

महात्मा, ईश्वर, हीरा, पारस है—इन सभी चीजोंमें उसका रहस्य ज्ञात होनेसे, जाननेसे क्षणमें बुद्धि बदल जाती है।

यह संसार हमें दूसरी तरहका दिखता है, महात्माको यह साक्षात् परमात्माका स्वरूप दिखता है। इस संसारका तत्त्व जान लें तो वासुदेवका स्वरूप दिखने लग जाय। भगवान् श्रीराम धनुषयज्ञमें खड़े हैं, वहाँ सबको अपने-अपने भावके अनुसार दिखते हैं। एक कथावाचक है, उसको भी श्रोता अपने-अपने भावके अनुसार देखते हैं। इसी तरह इस संसारमें सबकी अलग-अलग बुद्धि है। जो इसे परमात्माका स्वरूप समझता है, वह महात्मा है।

प्रवचन दिनांक—२१-१२-१९४५, प्रात:काल, गोरखपुर।

पारस और पत्थर एक-सी चीज है, किन्तु जो उनके तत्त्वको जाननेवाले होते हैं, वे पारसको पारस समझते हैं। हीरा, काँच, माणिक, झूठा मोती, सच्चा मोती—हमारे लिये सब एक-से हैं। जौहरी ही परीक्षा कर सकते हैं।

एक साधुने एक गृहस्थके यहाँ 'नारायण, हरि' की आवाज लगायी। गृहस्थ बड़ा गरीब था, बाहर आया, रोने लगा। रोता देखकर साधुने कहा—तुम रोते क्यों हो?

उसने कहा—महाराज! घरमें सब लोग भूखे बैठे हैं। आप आये, आपको क्या भिक्षा दें, इसलिये रोते हैं। भगवान्ने मुझे ऐसा बना दिया कि आपको अन्न भी नहीं दे सकते।

साधुने घरमें घुसकर दृष्टि डाली, कहा—तुम्हारेसे बढ़कर भाग्यवान् और कोई नहीं है। तुम चाहो तो सारी दुनियाको धनी बना सकते हो। तुम चाहो तो दुनियाकी गरीबी दूर कर सकते हो। साधुने पूछा—यह क्या है?

उसने कहा—पत्थर है।

साधुने कहा—नहीं, यह पारस है।

उसने कहा—इससे तो रोज चटनी पीसते हैं।

साधुने कहा—मुझे यह प्रत्यक्ष पारस दीखता है, मैं तुम्हारी बात कैसे मानूँ? तुमने पारसका नाम सुना है? घरमें लोहा हो तो लाओ।

लोहेकी सँडासी आदि लाये, छुआते ही सोना बन गये।

साधुने कहा—अब बता, तेरे समान कोई धनी है क्या?

उसने कहा—नहीं।

साधुने पूछा—अब इससे चटनी पीसोगे क्या?

उसने कहा—इसको तिजोरीमें रखेंगे।

जैसे उसके घरमें पारस पड़ा था, ऐसे ही हमारे हृदयमें भगवान् बैठे हैं, हम भटकते फिरते हैं।

यह संसार परमात्माका स्वरूप है, हमें संसार दिखता है। जब उस गृहस्थकी तरह हमारा भाव भी बदल जाय तो हमें भी संसार परमात्माका स्वरूप दिखने लगे। हरे रंगका चश्मा चढ़ानेसे सारे पदार्थ हरे-ही-हरे दिखने लगते हैं, ऐसे ही हरिका चश्मा चढ़ा लेनेसे सारा संसार हरिका स्वरूप दिखने लग जाय।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

भगवान् कहते हैं—जो मुझे सर्वत्र देखता है, उसके लिये मैं कभी अलग नहीं होता।

उस गृहस्थने साधुकी बात मान ली तो वह मालामाल हो गया, ऐसे ही हम गीताकी बात मान लें तो आनन्द-ही-आनन्द है। वही चीज भाव बदलनेसे दूसरी ही दिखने लग जाती है।

मुकुन्दलालजी पाण्डेयकी बात है उन्हें ज्ञात हो गया कि जिसके पास आये हैं, वे ये ही हैं तो उनकी दशा ही बदल गयी।

इसी प्रकार हम जिन भगवान्‌को खोजते हैं, वे हमारे पास ही हैं, सब संसारमें व्याप्त हैं। शास्त्र कहते हैं—यह संसार ब्रह्मका स्वरूप है।

शास्त्र और महात्मा इस बातको समझानेके लिये बहुत प्रयत्न

करते हैं। जो समझ जाता है, वह दूसरोंको बता सकता है।

भावका चश्मा है, उसे चढ़ा लें तो फिर दिखने लग जायँ। जितनी बात समझमें आ गयी, वह भूली नहीं जा सकती। जितना तत्त्व परमात्माका समझा गया, वह हृदयमें जम गया। वही उसकी असली जानकारी है और असली श्रद्धा है।

हमें यही प्रयास करना चाहिये, उसके लिये प्राण-पर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। फिर परमात्माका ज्ञान—परमात्माका जानना एक साधारण-सी बात है।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

भगवान् हमारे सम्मुख खड़े हैं

भगवान् साक्षात् सामने विराजमान हो रहे हैं। मेरे ऊपर उनकी छत्रछाया है। वे आश्वासन दे रहे हैं कि तुम चिन्ता मत करो। वास्तवमें चिन्ता भी क्या है? अर्जुनको भगवान् आश्वासन दे रहे हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

पूर्वके आधे श्लोकमें भगवान् उपदेश दे रहे हैं कि सारे धर्मोंको मेरेमें त्याग दे। मैं जिस प्रकार तुमसे कराऊँ, वैसे कर; जिस प्रकार नचाऊँ, वैसे नाच। दूसरी बात कहते हैं कि मेरी शरण आ जा। जो बात गीता १८। ५७ में कही गयी है, वही बात यहाँ कही है। वहाँ **मत्परः** कहा, यहाँ **मामेकं शरणं व्रज** कहा। 'मेरे परायण हो'—ऐसा कहना और 'मेरी शरण हो'—यह कहना एक ही बात है। हमें इस प्रकारका भाव करना चाहिये कि भगवान् आकाशमें खड़े हैं। वे कह रहे हैं—

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

प्रवचन दिनांक—१-५-१९४५, स्वर्गाश्रम।

मैं तुझे सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर। जो बात अर्जुनके लिये कही, वही सबके लिये है। हमारे मनमें यह भाव पैदा होता है कि हम बड़े पापी हैं, नीच हैं। भगवान् कहते हैं—मैं सारे पापोंसे मुक्त कर दूँगा। भगवान्की कृपाके सम्मुख पाप कोई बड़ी चीज नहीं है। हम बराबर इस प्रकारकी भावना करते रहें कि भगवान् हमारे सम्मुख खड़े हैं और कह रहे हैं— शोक मत कर। मैं तुमको सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा। वे कृपा दृष्टिसे देख रहे हैं और हमारे ऊपर प्रेम, आनन्द, शान्ति और समताकी वर्षा कर रहे हैं। उनके गुण हमारे रोम-रोममें प्रवेश कर रहे हैं, जिससे हमें रोमांच हो रहा है और रोमांच होते समय प्रत्येक रोम-रोमसे राम, रामकी ध्वनि निकल रही है—

रग रग बोले रामजी, रोम राम रंकार।
सहज ही ध्वनि होत है, कहे कबीर बिचार॥

जिस प्रकार हनुमान्जीके प्रत्येक रोम-रोममें राम, राम रम रहा था, उसी प्रकार हम भावना करें कि हमारे शरीरमें जो साढ़े तीन करोड़ रोम हैं, उन सबसे राम, रामका जप हो रहा है। यह बड़े ऊँचे दर्जेका भजन है। हमारा लक्ष्य इस प्रकारका होना ही भजन है। हमें इस प्रकारकी साधना करनी चाहिये। अहा! देखो कैसा आनन्द और कैसी शान्ति है! भगवान्की दयाका स्रोत बह रहा है, मानो हमें प्रेमके सागरमें ही डुबा दिया हो! कैसी ज्ञानकी दीप्ति हो रही है!

यह कैसा ज्ञान है?—चिन्मय है। इस प्रकार सगुण-निराकार परमात्माके गुणोंको बारम्बार याद करके मुग्ध होता रहे—

कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।

सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥ ९ ॥

(गीता ८। ९)

जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियन्ता, सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करनेवाले अचिन्त्यस्वरूप, सूर्यके सदृश नित्य चेतन प्रकाशरूप और अविद्यासे अति परे, शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमेश्वरका स्मरण करता है।

इस प्रकारके गुणोंकी स्मृति भी भगवान्‌की कृपासे ही होती है। जिसपर परमात्माकी कृपा होती है, उसपर सबकी कृपा होती है—

जा पर कृपा राम की होई। ता पर कृपा करै सब कोई॥

हम सबपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है। मेरे ऊपर भी भगवान्‌की कृपा है, जो आपलोग यहाँ आये हैं, इससे मेरा समय भी भगवान्‌की चर्चामें बीतता है। वास्तवमें वक्ताओंको श्रोताओंकी कृपा माननी चाहिये। हरेक भाईको अपने ऊपर भगवान्‌की दया पद-पदपर देखनी चाहिये। राजा साहबसे जो संयोग है, वह भी भगवान्‌की कृपा ही है, नहीं तो राजा, महाराजासे संयोग होना बड़ा ही कठिन है (ये सीतामऊके राजा थे, जो सेठजीके सत्संगी थे), कारण कि अच्छे पुरुषोंको तो राजा, महाराजासे कुछ काम नहीं, वे तो वहाँ जाते ही नहीं, और राजा, महाराजा इस तरह आनेमें अपनी मान-हानि समझते हैं। इस प्रकारका संयोग भगवान्‌की कृपासे ही होता है। हरेक बातमें भगवान्‌की दयाका दिग्दर्शन करके प्रसन्न होना चाहिये और ईश्वरका अपने ऊपर हाथ समझना चाहिये। जब ईश्वरका हाथ है, तब ईश्वर भी यहाँ हैं ही। उनके स्वरूपकी ओर देखकर तथा उनके मुखकी ओर

देख-देखकर मुग्ध होता रहे। फिर चिन्ता, भय, शोक पासमें नहीं आ सकते। यदि आते हैं तो वह बात आपके ध्यानमें नहीं है कि भगवान् आश्वासन दे रहे हैं?

भगवान्‌के नेत्र और मुख खिले हुए हैं। उनके नेत्र गुलाबके फूलकी तरह खिले हुए हैं। भगवान्‌के हृदयके भाव समता, शान्ति और आनन्द हैं, वे नेत्रोंके द्वारा प्रकट हो रहे हैं, क्योंकि नेत्र उनके प्रकट होनेका स्थान है। दया-दृष्टि कही जाती है, दया-कान या दया-मुख नहीं कहा जाता है। यद्यपि गुणोंका स्थान हृदय है, परन्तु उनके प्रकट होनेका स्थान नेत्र है। किसी आदमीको क्रोध आता है तो लाली नेत्रोंमें ही आती है, कानोंमें नहीं। अधिक क्रोध आता है तो होठ भी फड़कने लगते हैं, इसलिये मुख भी भावोंके प्रकट होनेका एक स्थान है।

भगवान्‌का मुखारविन्द खिला हुआ है, वे प्रसन्न हो रहे हैं, उनके नेत्रोंसे दयाका विकास हो रहा है, हम सबके ऊपर उसकी वृष्टि हो रही है, हम सब उसमें मग्न हो रहे हैं। प्रेमकी परीक्षा भी नेत्रोंसे ही होती है। तुलसीदासजी कहते हैं—

आवत ही हरषे नहीं, नयनन नहीं सनेह।
तुलसी तहाँ न जाइये, कंचन बरसे मेह॥

दया, समता और प्रेम—सबकी परीक्षा नेत्रोंसे ही होती है। गीतामें भी '**समदर्शनः**'; '**समं पश्यति**' आदि शब्द आये हैं। नेत्रोंमें गुणोंका दिग्दर्शन होता है। नेत्रोंसे इन सब गुणोंको देखना चाहिये, समझना चाहिये। भगवान्‌से इन सब बातोंका विकास हो रहा है। सारे गुण हमारेमें प्रविष्ट हो रहे हैं। भगवान् प्रेमकी मूर्ति ही ठहरे। उनका स्रोत बहता ही रहता है। प्रेम ही आनन्द है। प्रत्यक्षमें आनन्द और प्रसन्नताकी वर्षा भगवान्‌के नेत्रों द्वारा हो

रही है। भगवान् स्वयं चिन्मय हैं। उसमें भी विशेष चेतनता नेत्रोंमें है। महान् ज्ञानका सागर, ज्ञानकी दीप्ति, जिसमें हम डूबे हुए हैं—यह सब प्रभुकी कृपा ही है। प्रभु ज्ञानका प्रभाव डाल रहे हैं, इससे हमारे रोम-रोममें ज्ञानकी दीप्ति हो रही है। सारे शरीरमें, इन्द्रियोंमें और मनमें ज्ञान परिपूर्ण हो रहा है। रात-दिन हममें गुण प्रविष्ट हो रहे हैं। ऐसी परिस्थितिमें क्या विक्षेप, आलस्य आ सकता है?

भगवान् आकाशमें खड़े-खड़े मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे हैं—हमें हर समय इसी तरह समझते रहना चाहिये, फिर आपकी अवस्था और आपका जीवन बदल जायगा। जो कुछ उच्चारण होता है, कहा जाता है, व्याख्यान हो रहा है, यह भी ईश्वरकी दया ही है। यदि उनकी दया न हो तो ऐसी स्फुरणा ही नहीं हो। यदि अपने हाथकी बात हो तो खूब बढ़िया-बढ़िया बातें कहें, किन्तु सब पराधीनता है। यदि कोई वक्ता ऐसा मान लेता है कि सब गुण मेरेमें हैं तो वह निरा मूर्ख है; उसको ईश्वरके तत्त्वका ज्ञान ही नहीं है। भगवान् उसके ऐसी थप्पड़ मारते हैं कि वह सब भूल जाता है।

देवताओंको अभिमान हुआ, तब भगवान् यक्ष रूपसे प्रकट हुए। अग्नि और वायु देवता परीक्षा लेने आये, तब भगवान्ने अग्नि और वायुकी शक्तिका आकर्षण कर लिया। अब उनमें क्या रखा है? भगवान्ने दिखला दिया कि तुममें जो बल है, वह मेरा ही बल है।

भगवान् गीतामें क्या सिखा रहे हैं? वे कहते हैं कि तेजस्वियोंका तेज और बलवानोंका बल मेरा ही है (गीता ७। १०-११)। आपमें जैसा प्रेम और श्रद्धा होती है, उसी तरहका वातावरण हो जाता है, उसी तरहके शब्द वक्ताके मुखसे निकलने लग जाते हैं। आपलोगोंकी तीव्र इच्छा होगी एवं साक्षात् महात्मा यदि नहीं

मिलेंगे तो भगवान् महात्माका रूप धारण करके हमें शिक्षा देने आयेंगे अथवा किसी साधारण-से-साधारण व्यक्तिको भी ऐसी योग्यता देकर हमें शिक्षा दिला सकते हैं। भगवान्की इच्छाके बिना कोई तिनका भी नहीं तोड़ सकता। अर्जुन जैसे वीरको भगवान् बता रहे हैं कि ये सब मेरे मारे हुए हैं। तू केवल निमित्तमात्र बन जा। तू युद्ध नहीं भी करेगा तो भी ये सब मारे जायँगे। तू कहता है—मैं युद्ध नहीं करूँगा, तेरा यह निश्चय मिथ्या है।

भगवान्की शक्ति ही सब काम कर रही है। जब भगवान्ने धराधाम छोड़ दिया, तब वही अर्जुन था और वही गाण्डीव धनुष था। डाकुओंने उनको लूट लिया। अर्जुन चुपचाप लौट आये। भगवान्ने दिखला दिया कि तुममें जो शक्ति थी, वह मेरी ही थी।

जहाँ कहीं अहंकार आ जाता है, भगवान् वहीं थप्पड़ मारते हैं, यह भी भगवान्की कृपा है। हमारे हितके लिये भगवान् हमको चेताते हैं, यह भी भगवान्की कृपा है। हमें भगवान्की कृपासे ही कुछ लाभ होता है। वक्ताको समझना चाहिये कि मेरे द्वारा जो कुछ कहा जा रहा है, वह प्रभुकी कृपासे ही कहा जा रहा है, मेरा पुरुषार्थ बिल्कुल नहीं है। श्रोताओंको भी भगवान्की कृपा समझनी चाहिये। यह नहीं समझना चाहिये कि हमारी श्रद्धा और प्रेमका फल है। प्रेम और श्रद्धा होना आपके हाथकी बात नहीं है। हाँ, प्रेम और श्रद्धाके लिये भगवान्से गद्गद् भावसे, रोकर प्रार्थना करनी चाहिये तो सफलता हमें मिल सकेगी। सफलता नहीं मिलेगी तो भी वह सफलता ही है।

प्रभुके आगे की हुई प्रार्थना नष्ट नहीं होती है। बीज डालकर उसकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। जब जड़ पृथ्वी भी बीजको अपने पेटमें नहीं रखती है तो क्या भगवान् रख सकते हैं? हमारे

हृदयमें जो भाव पैदा होते हैं, वह भी भगवान्‌की कृपा है हमें प्रभुपर निर्भर रहना चाहिये। भगवान् जो कुछ करते हैं, वह ठीक है। यदि अपकी दृष्टि उनकी दयाकी ओर रहेगी तो आपको उत्तरोत्तर प्रसन्नता होगी। आप अपने साधनको उत्तरोत्तर उन्नत देखेंगे। प्रभुकी दयाका सागर यहाँ ओत-प्रोत रहता है। वह दया निराकार है, क्योंकि जितने गुण होते हैं, वे बिना आकारके होते हैं। परन्तु उस निराकारको भी प्रत्यक्षवत् अनुभव करना चाहिये। प्रत्यक्षमें आपको कैसा आनन्द मिल रहा है। भगवान् कहते हैं—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति। (गीता ५। २९)

–जो कोई मेरी सुहृदताकी ओर दृष्टि डालता है, उसको शान्ति मिलती है। हमको भगवान्‌के दया, प्रेम और शान्तिकी ओर दृष्टि डालनी चाहिये। हमलोग उनकी दयाके पात्र हो गये, तभी तो मनुष्य-शरीर मिला है। मनुष्य-शरीर मिलनेपर ऐसे स्थानपर (स्वर्गाश्रम) आ गये हैं, जो साक्षात् मुक्तिका द्वार है, फिर भगवच्चर्चा! इससे बढ़कर प्रभुकी और क्या दया होगी! ऐसी परिस्थिति पाकर भी हम यदि भगवत्कृपासे वंचित रह जायँगे तो तुलसीदासजी कहते हैं—

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

(रा० च० मा०, उत्तरकाण्ड, दोहा ४४)

ऐसे संयोगको पाकर भी जो भवसागरसे पार नहीं उतरता है, वह निन्दाका पात्र है और आत्म-हत्यारा है। ऐसा संयोग प्राप्त हो जाय तो उसे भगवत्प्राप्ति हो ही जाती है। अतः हमें भगवत्-प्राप्तिके मार्गमें जोशके साथ लग जाना चाहिये।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

गंगा-किनारे जप-ध्यान, सत्संग करना चाहिये

भगवान्ने गीतामें कहा है—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥

(गीता ६। ११)

शुद्ध भूमिमें, जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं, जो न बहुत ऊँचा है और न बहुत नीचा, ऐसे अपने आसनको स्थिर स्थापन करके ध्यानके लिये बैठना चाहिये।

यहाँपर गंगाजीकी रेणुका उससे भी बढ़कर है। गंगाके पास काम और क्रोध आ ही नहीं सकते। यहाँपर स्वाभाविक ही सात्त्विकता व्याप्त हो रही है। यहाँकी हवा भी लाभदायक है। यहाँपर सब जगह भगवान् निराकार रूपसे विराजमान हो रहे हैं। यहाँ स्वाभाविक ही वैराग्य उत्पन्न होता है। यहाँ तीर्थस्थानमें हरेक कार्यका अनन्तगुणा फल होता है, इसलिये यहाँपर जप-ध्यान और सत्संग करना चाहिये। गंगा किनारे जैसी शान्ति मिलती है, वैसी कहीं नहीं मिल सकती है। इसलिये यदि यहाँपर रहकर साधन नहीं होगा तो ऐसा स्थान और कहाँ मिलेगा? यहाँ परमात्मा प्रत्यक्ष विराजमान हैं। संसार तिरविरेकी तरह अथवा स्वप्नवत् है। एक परमात्माके सिवाय और कोई वस्तु है ही नहीं। बस, परमात्माका स्वरूप आत्मा ही इस देहमें स्थित है। ध्यान करनेसे मालूम होता है कि परमात्मा सब जगह ज्ञान, आनन्दरूपमें विराजमान हैं। शान्ति और प्रसन्नता भी हमारे शरीरमें भगवान्के स्वरूपमें ही विराजमान हो रही है। सर्वत्र

प्रवचन दिनांक—२-५-१९४५, प्रातःकाल, स्वर्गाश्रम।

भगवान् ही व्यापक हो रहे हैं। भगवान् आनन्दमय हैं। जिस प्रकार सूर्य प्रकाशका केन्द्र है, इसी प्रकार भगवान् आनन्दके केन्द्र हैं। यह परमात्मविषयक आनन्द मनुष्यको ही प्राप्त हो सकता है, कुत्तों, गधोंको नहीं। संसारमें जो शास्त्रोंको नहीं जानते हैं, वे इसीलिये गधोंके समान कहे जाते हैं। ईश्वरने मनुष्यका शरीर देकर ज्ञान, बुद्धि भी दी है, इसलिये इनको पाकर परमात्माका ध्यान करना चाहिये। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(गीता ७। ७)

हे धनंजय! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मनियोंके सदृश मुझमें गुँथा हुआ है।

परमात्माके सिवाय न तो कोई वस्तु है और न होगी। मात्र परमात्मा ही हैं। गीता कहती है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(गीता २। १६)

असत् वस्तुकी तो सत्ता नहीं है और सत्‌का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनोंका ही तत्त्व तत्त्वज्ञानी पुरुषोंद्वारा देखा गया है।

जो चीजें दिखलायी पड़ती हैं, वे नाशवान् हैं। आकाशमें बिजली चमकती हैं, बादल दीखते हैं, अन्तमें सबका नाश होकर आकाश रह जाता है, इसी प्रकार यह संसार नाश होकर परमात्मा ही रहेगा। इसलिये साधकको परमात्माका ही ध्यान करना

चाहिये। देखो, प्रत्यक्षमें कैसी शान्ति मिलती है! वासुदेव नारायण—ये सभी भगवान्‌के नाम हैं। इनको सुनकर ध्यानमें मस्त हो जाय। वाणीसे उच्चारण करे तो नारायण! मनसे ध्यान भी करे तो नारायणका। इस प्रकार अन्तमें नारायण ही रह जाता है। गीतामें कहा है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७। १९)

बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।

मनुष्यका शरीर इसीलिये सर्वोत्तम है कि यही परमात्माकी प्राप्तिका साधन है, इसीसे दुःखोंका नाश होकर चौरासी लाख योनियोंका नाश हो सकता है। जो सबको वासुदेव समझता है, वही महात्मा है। नारायणका ध्यान करे। संसारको एकदम भुला दे। महात्माओंके चित्तमें हर समय आनन्द और प्रसन्नता रहती है। दूसरे जीवोंके आनन्द नहीं है, वे दुःखी हैं। जिसमें सुख-शान्ति नहीं, वह महात्मा नहीं। इसलिये मनुष्यको परमात्माकी प्राप्तिका साधन करना चाहिये। गीतामें कहा है—

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके॥

(गीता १५। २)

उस संसारवृक्षकी तीनों गुणोंरूप जलके द्वारा बढ़ी हुई एवं

विषयभोगरूप कोपलोंवाली देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनिरूप शाखाएँ नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं तथा मनुष्यलोकमें कर्मोंके अनुसार बाँधनेवाली अहंता, ममता और वासनारूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकोंमें व्याप्त हो रही हैं।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥

(गीता १५। ३)

इस संसारवृक्षका स्वरूप जैसा कहा है वैसा यहाँ विचार-कालमें नहीं पाया जाता। क्योंकि न तो इसका आदि है, न अन्त है तथा न इसकी अच्छी प्रकारसे स्थिति ही है। इसलिये इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलोंवाले संसाररूप पीपलके वृक्षको दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्रद्वारा काट डालना चाहिये।

संसार पीपलका वृक्ष है। इस संसार-वृक्षको वैराग्य रूपी शस्त्रसे काटकर परमात्माकी खोज करनी चाहिये, जहाँ जाकर मनुष्य लौटकर नहीं आता। जिस परमात्मासे संसारका विस्तार हुआ है, उस परमात्माका ध्यान करो। वैराग्य होनेसे संसारका ध्यान छूट सकता है। जिस समय तीव्र वैराग्य होता है, उस समय याद करनेपर भी संसारकी स्मृति नहीं हो सकती। परमात्माका ध्यान करनेपर वह तन्मय होकर जाग जाता है और परमात्माको ही देखता है। सात्त्विक सुख और आनन्दकी वृद्धि होनेके बाद हमको आगे बढ़ना चाहिये। आखिरमें परमात्माकी प्राप्ति होनेपर आनन्द-ही-आनन्द और शान्ति-ही-शान्ति है। परमात्माकी प्राप्ति होनेपर और सुखकी इच्छा नहीं रहती।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६।२२)

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

सात्त्विक सुख राजसी और तामसीसे बहुत ऊँचा है। किन्तु वहाँ भी ठहरे नहीं, उसको लाँघनेपर ही परमात्माकी प्राप्ति होती है। भगवत्-प्राप्तिके अनन्तर सारी दुनियाके आनन्द स्वप्नवत् हो जाते हैं। जागनेके बाद स्वप्नका कोई मूल्य नहीं। इसलिये तुमको साधन करना चाहिये। साधन भी निष्काम भावसे करे, उसमें आसक्ति नहीं रखे। परमात्मा आनन्दरूप हैं। आनन्दका ध्यान करके आनन्दमें समा जाय। परमात्मा पूर्ण हैं। उनकी प्राप्तिके बाद जन्म सफल हो जाता है। परमात्माका स्वरूप आनन्दमय है। वह आनन्द अनन्त और अपार है, वहाँ और आनन्दकी गुंजाइश नहीं रहती। वह इस आनन्दसे अत्यन्त विलक्षण है, उस आनन्दका नाम ही नारायण है। वह पूर्ण ब्रह्म है—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

(ईशावास्योपनिषद्-शान्तिपाठ)

वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म पुरुषोत्तम सब प्रकारसे सदा-सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत् भी उस परब्रह्मसे ही पूर्ण है; क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तमसे ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्मकी पूर्णतासे जगत् पूर्ण है, इसलिये भी वह परिपूर्ण

है। उस पूर्ण ब्रह्ममेंसे पूर्णको निकाल लेनेपर भी वह पूर्ण ही बच रहता है।

परमात्मा विज्ञान, आनन्दसे परिपूर्ण हैं। जो कुछ प्रतीत होता है, वह भी आनन्द ही है। यह संसार भी परमात्माका स्वरूप है। वह आनन्द सम, अनन्त, पूर्ण और नित्य है। वह अनन्त सत् है, इसलिये संसारको छोड़कर परमात्माका ध्यान करना चाहिये।

एक चींटी एक मिश्रीके पहाड़पर बैठकर भी, यदि उसके मुखमें नमक है तो वह उस मिश्रीके पहाड़का आनन्द नहीं ले सकती है। इसी प्रकार यह जीव आनन्दमय परमात्मामें स्थित होकर भी बुद्धि-रूपी मुखसे विषयोंको पकड़े हुए है। उस संसारके ध्यानको छोड़नेपर ही मिश्रीके पहाड़ रूपी नित्य चेतनका आनन्द मालूम पड़ सकता है, इसलिये संसारको छोड़कर परमात्माका ध्यान करना चाहिये। संसारके चिन्तनको छोड़ दें। ध्यान करते-करते प्राणी भगवान्में स्थित हो जाता है। सांसारिक ज्ञानको छोड़कर परमात्मामें विचरे। परमात्मामें ध्यान लगानेपर प्राणी सदाके लिये मुक्त हो जाता है और उसका संसारसे सम्बन्ध नहीं रहता। ध्यानमें मस्त होकर, परमात्मामें मिलकर किसीका भी चिन्तन न करे।

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥

(गीता ६। २५)

क्रम-क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरतिको प्राप्त हो तथा धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा मनको परमात्मामें स्थित करके परमात्माके सिवा और कुछ भी चिन्तन न करे।

स्थिर बुद्धिद्वारा मनको परमात्मामें लगावे। परमात्मामें मन

लगाकर तन्मय हो जाय। परमात्माके सिवाय किसीका चिन्तन ही न करे। यदि हो जाय तो उसी समय भुला दे। आनन्दमय बन जाय और तन्मय होकर रहे। वह आनन्द असीम और अनन्त है। उसकी प्राप्तिके बिना उसको कोई जान नहीं सकता, इसलिये संसारको भुलाकर आनन्दका ध्यान करे। आनन्दमें गोता लगावे। शरीरका ज्ञान होनेपर भी रोम-रोममें आनन्द-ही-आनन्द है। जैसे आकाश सर्वव्यापी है, उसी प्रकार परमात्मा भी सर्वव्यापी है। उसका नाम नारायण है। उसका नाम जपते-जपते नारायण ही बन जाय। नारायणके सिवाय और कुछ है ही नहीं। सर्वत्र नारायणको समझकर नारायणका ही नाम उच्चारण करे। आनन्दमें तन्मय होकर अपने आपको भुला दे। परमात्माके ध्यानमें भूलना ही असली आनन्द है। इस प्रकार ध्यान करनेसे तुरन्त ही परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। ज्ञान ही आनन्द है। सत्, चित्, आनन्द—ये तीन चीजें नहीं हैं, यह तो एक ही परमात्माके नाम हैं। वह सदा और नित्य है। वह चेतन वस्तु है। चेतन स्वयं ही आनन्द है। वहाँ चेतनके सिवाय और कोई भी वस्तु नहीं है। वहाँ संसारका अत्यन्त अभाव है। केवल परमात्मा है, परमात्माके सिवाय और कुछ नहीं है। बस, सब कुछ भुलाकर चिन्मय वस्तु परमात्माका अनुभव करे।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

काम, क्रोध, लोभ आदिके नाशके लिये उपाय—भजन, सत्संग

प्रश्न—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर—ये बहुत दुःख देते हैं?

उत्तर—ये छः दोष हैं। इन सबके विनाशके लिये दो चीजें प्रधान हैं—भजन और सत्संग। भगवान्‌से पुकार लगाये। ईश्वरकी भक्ति कह दो, चाहे ईश्वरका भजन कह दो—एक ही बात है। भगवान्‌से प्रार्थना करे—हे नाथ! हे नाथ!!

हमारे जब-जब आपत्ति आती, तब-तब हे नाथ! हे नाथ! की पुकार लगाते तो ये सब भाग जाते। प्रत्यक्ष देखी हुई बात है। जैसे पुलिसका नाम सुननेसे डाकू भागते हैं, इसी प्रकार भगवान्‌का नाम लेते ही ये दोष भागते हैं। इसलिये सबसे अच्छा उपाय है—भगवान्‌की पुकार लगाना। जिस प्रकार द्रौपदी, गजेन्द्रने पुकार लगायी थी, उस प्रकारसे आतुर होकर पुकार लगानेसे भगवान् स्वयं आ जाते हैं। सारे संकटोंका विनाश हो जाता है। यह उपाय ऐसा जबरदस्त है। इस अस्त्रको पासमें रखो। जब काम पड़े, पुकार लगाओ—हे नाथ! हे नाथ!! यह गायत्री-मंत्रकी तरह है। सगुण-साकारकी उपासनाका हमारे यह मंत्र है। शास्त्रोंमें इस प्रकारका मंत्र नहीं मिलेगा। नारायणास्त्रकी तरहका यह अस्त्र है। नारायणास्त्र तो दुबारा नहीं चलाया जा सकता, पर अपना यह नारायणास्त्र बार-बार चलाओ। नारायणका नाम ही नारायणास्त्र है। आर्त होकर भगवान्‌को पुकारो। इतना काम तुरन्त ही हो जाता है कि पुकार लगानेसे काम, क्रोध आदि भाग जाते

प्रवचन दिनांक—४-६-१९४२, प्रातःकाल, साहबगंज, गोरखपुर।

हैं। इस अस्त्रसे ये षट्-रिपु ही क्या, हजारों रिपु मारे जा सकते हैं।

प्रश्न—क्या विश्वास होनेसे काम होगा?

उत्तर—विश्वास हो चाहे न हो, यह तो उनके नामकी महिमा है। जितना हमारे विश्वास है, उतने ही से इतना काम तो हो सकता है—नामकी ऐसी महिमा है। जिसके बिल्कुल विश्वास नहीं होगा, वह नाम लेगा ही नहीं। विश्वास नहीं हो, तब भी नाम लेते रहो। एक आदमीके पित्तकी बीमारी है, वैद्य बताता है—मिश्री चूसते रहो, पित्त स्वतः ही शान्त हो जायगा। इसी प्रकार यह रोग हैं। नाम जपते रहो, रोग अवश्य दूर होगा। थोड़ी श्रद्धा हो, तब भी काम हो जायगा। अधिक श्रद्धा हो, तब काम हुआ ही पड़ा है। नामकी महिमा रामायणमें बतायी गयी है—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

(रा० च० मा०, १। २८। १)

प्रश्न—भजनके प्रभावसे पहलेके अशुभ कर्म कटते हैं या नहीं? या बिना भोगे नहीं कटते?

उत्तर—हमलोगोंने जितने पाप किये हैं, उनके भण्डार-के-भण्डार भरे हुए हैं, जैसे किसानके अन्नका कोठा भरा रहता है, इसी प्रकार कोठे-के-कोठे भरे हैं। किसानने थोड़ा बीज खेतमें बो दिया, तब उसका दो विभाग हो गया, इसी प्रकार हमारे कर्मोंके दो विभाग हैं—एक संचित और एक प्रारब्ध। जो फल देनेके लिये सम्मुख हो गया है वह प्रारब्ध है, वह अधिकांशमें तो भोगनेसे ही नष्ट होता है, परन्तु शास्त्रोंमें जो प्रायश्चित्त बताये गये हैं, उनसे भी पापोंका नाश हो जाता है। भगवान्से हम प्रार्थना करें—प्रभो! हम कष्ट पा रहे हैं। इसका निवारण करें। भगवान्

समझते हैं कि इसे निवारण करनेमें इसका हित है तो निवारण कर देते हैं। यदि निवारण करनेमें वे हित नहीं देखते तो नहीं भी करते। पापोंका फल भुगताना ठीक समझते हैं तो भुगताते हैं। वे जो कुछ करते हैं, उसमें हमारा परम हित रहता है। बच्चेके फोड़ा है, माँ-बाप देखते हैं कि चीरा दिलानेसे ठीक होगा तो वे लड़केके रोनेकी परवाह न करके चिरवा देते हैं, इसी प्रकार भगवान् भी हमारे रोनेकी परवाह न करके पापोंका फल भुगता देते हैं।

प्रश्न—दशरथजीको कितनी मुसीबतें उठानी पड़ीं! अर्जुनको भी कितना दुःख हुआ! इसलिये हमारा विश्वास है कि कर्मोंका फल नष्ट नहीं होता, भोगना ही पड़ता है?

उत्तर—दोनों ही बात ठीक हैं। नष्ट नहीं भी होता है, हो भी जाता है। राजा दशरथके लिये श्रवणके पिताका शाप वरदान हो गया। शाप सुनकर उन्होंने सोचा कि मेरे तो पुत्र है ही नहीं, शापसे पुत्र तो होगा! पुत्र होना भी लाभ और भगवान्के वियोगमें मरना भी लाभ—दोनों लाभ हुए। भगवान् उसीमें उनका हित समझते थे, नहीं तो उलट-पुलट कर देते।

अर्जुनके लिये भी यही बात थी। भगवान् संधि करा देते, पर दुष्टोंका नाश कैसे होता? इससे युद्ध कराना ही उचित समझा। तुम केवल निमित्तमात्र बन जाओ। तू निमित्त नहीं भी बनेगा तो भी ये मरेंगे ही। भीष्म, द्रोण आदि सब मरनेवाले हैं—यह उन्होंने विश्व-रूपमें दिखा दिया। भगवान्ने इसीमें सबका हित देखा, इसलिये अपने प्यारे प्रेमी अर्जुनको शरणागत वत्सल भगवान्ने संकटमें डाला और उसका बाल भी बाँका नहीं होने दिया। अन्तमें फल उत्तम हुआ।

भावीमें होनेवाले दुःखोंका नाश भजन करनेसे हो जाता है, परन्तु प्रारब्ध कर्मका नाश हो भी जाता है, नहीं भी होता–दोनों ही बातें देखनेमें आती हैं। एक भाईके पुत्र नहीं है, उसके प्रारब्धमें नहीं है। पुत्रेष्टि–यज्ञ करता है तो हो भी जाता है, नहीं भी होता। प्रायश्चित्त करना भी भोग ही है।

भगवान्‌की भक्ति करनेसे दुःखकी निवृत्ति होती है, नहीं तो आर्त भक्त हो ही कैसे? श्रवणकी कथा वाल्मीकि रामायणमें बड़ी सुन्दर है। जो मनुष्य उसे पढ़ता है, उसके अश्रुपात होने लग जाता है। आज भी कोई लड़का माता–पिताकी सेवा करता है तो उसे श्रवण कहते हैं। अपने भी श्रवण बनें, कंस नहीं बनें।

माताके साथ किस प्रकारका व्यवहार करें? जिस प्रकार भगवान् श्रीरामने कैकेयीके साथ किया। अच्छे पुरुषोंकी कथा इसीलिये है कि हम उनका अनुकरण करें। भगवान् राम साक्षात् परमेश्वर थे। वे हमें सिखा गये कि तुम इस प्रकारका व्यवहार करो। भगवान् जो कुछ लीला करते हैं, उसमें हमारा हित भरा रहता है। जिसमें जितना त्याग है, वह उतना ही परमात्माके निकट है। हमलोगोंको त्याग सीखना चाहिये। त्याग ही सबसे बढ़कर चीज है। त्यागमें आप स्वतन्त्र हैं, पर फलमें आप परतन्त्र हैं। भगवान् कहते हैं—कर्ममें तुम्हारा अधिकार है, फलमें नहीं। त्याग ही प्रधान है।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

भगवान् सदा हमारे साथ हैं, यह दृढ़ विश्वास रखो

ज्वालाप्रसादजीका प्रश्न—क्या किया जाय कि सांसारिक काम और भगवत्-स्मरण दोनों काम होते रहें।

उत्तर—यह बात हो सकती है। होनेसे बड़ा लाभ है। तुलसीदासजी आदि कहते हैं। असम्भव होती तो वे लोग कहते ही क्यों? यह बात अभ्याससे हो सकती है। मैं बालक था, तब गाँवमें दो नट आये, बाँस गाड़े, उसपर मोटा रस्सा बाँधा। नटनीने सिरपर दो घड़े रखे, गलेमें ढोल लटकाया और उसे बजाती है, मुँहसे गाती है, पैरमें सींग बँधा हुआ है, रस्सेपर चलती है, सींगको रस्सेपर रखती है, सिरपर मटकी है। प्रधान लक्ष्य उसका अपने पैरोंकी ओर है। बात क्या है?—अभ्यास; वह भी पैसोंके लिये। वही अभ्यास ईश्वरके लिये हो और तत्परतासे अभ्यास करे तो हो ही सकता है। उसकी मुख्य वृत्ति चरणोंमें है, उसी प्रकार हमें मुख्य वृत्ति भगवान्‌में रखनी चाहिये। गौणी-वृत्तिसे संसारका काम करना चाहिये।

हम अपने हृदयमें ऐसा समझें कि भगवान् गुप्त रूपसे हमारे साथ हैं। मनसे हम भगवान्‌का स्वरूप देखते रहें। बुद्धिका निश्चय रहे कि भगवान् हमारे साथ हैं। मनसे मनन करें कि भगवान् हमारे साथ हैं। कुछ भी खाते हैं तो वे साथमें खाते हैं; चलते हैं तो साथमें चलते हैं—यह हमारा भाव दृढ़ हो जाय तो भगवान्‌की स्मृति हर समय बनी रहे और शरीरसे काम होता रहे। हमारा मन कुछ-न-कुछ चिन्तन करता ही रहता है, उसके जिम्मे कर दिया कि तुम भगवान्‌का मनन करो।

प्रवचन दिनांक—५-६-१९४२, गोरखपुर।

हम संसारका काम करते हैं—शरीरसे काम करते हैं, मनसे दूसरा ही मनन करते हैं। हमें दूसरा परिवर्तन कुछ नहीं करना है। बस! इतना ही करना है कि मनसे जो दूसरा मनन होता है, उसकी जगह भगवान्‌का मनन करने लगें। शरीरसे क्रिया होती ही है। भगवान्‌को साथमें समझें। संसारके काममें भूल भले ही हो जाय, पर भगवान्‌की स्मृतिमें भूल न हो। जो भगवान्‌की शरण हो जाता है, भगवान् उसे सब प्रकारसे सँभाल लेते हैं। इसलिये यदि संसारके काममें भूल भी हुई तो भगवान् उसे सँभाल लेंगे।

इस प्रकारके कई उदाहरण मिलते हैं। एक भगवद्भक्त सिपाही खजानेपर पहरा देनेका काम करता था। एक दिन उसे ज्वर आ गया, वह पहरा देने नहीं जा सका। विचार करता रहा कि क्या करूँ, नौकरीसे निकाल दिया जाऊँगा? दूसरे दिन वह प्रार्थनापत्र लेकर गया और कहा कि कल ज्वर आ गया था, इसलिये मैं नहीं आ सका। अधिकारीने कहा—तुम तो कल रातको पहरेपर थे, तुमसे मेरी बात हुई थी। ठीक तुम ही ड्यूटीपर थे। सिपाहीने कहा—हुजूर! यह तो कोई दूसरा ही ड्यूटी दे गया। सम्भव है—भगवान् ही पहरा दे गये। आपके अहोभाग्य हैं! मैं तो अब त्यागपत्र देता हूँ। जो पहरा दे गया है, वही योगक्षेमकी परवाह करेगा। अन्तमें वे बड़े महात्मा हो गये। भगवान्‌ने कहा भी है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

भगवान् कहते हैं—जैसे पशु भार वहन करता है, वैसे ही

मैं अपने अनन्य भक्तका सब भार वहन करता हूँ। अप्राप्तकी प्राप्तिका नाम योग और प्राप्तकी रक्षाका नाम क्षेम है। लौकिक-पारलौकिक सब वे ही वहन करते हैं। क्या यह भगवान्‌का वचन मिथ्या है? यदि सच्चा है तो हमें चिन्ता क्यों करनी चाहिये? प्रथम तो अभ्याससे काम होता ही रहेगा, कभी कमी आ गयी तो उससे कोई हानि नहीं है। तीसरी बात है—हमें भगवान्‌पर विश्वास करना चाहिये कि भगवान् निभायेंगे। हमें मुख्य रूपसे भगवान्‌का चिन्तन करना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि जो वस्तु हमारे सामने पड़े, सबमें भगवान्‌का दर्शन करें। यह सिद्धान्त समझ लें कि भगवान् सर्वत्र व्यापक हैं। हमारा व्यवहार भी होता रहे और जिससे व्यवहार कर रहे हैं, उसे भगवान् भी मानते रहें।

प्रश्न—'दोनों बातें कैसे होंगी? हमारा लड़का है, वह हमें प्रणाम करे तो हम उसे जब भगवान्‌के रूपमें देखेंगे तो हम उससे प्रणाम किस प्रकार करवायेंगे? कुत्ते, गधेमें जब भगवान् देखकर प्रणाम करेंगे तो लोग हमें पागल कहेंगे?'

उत्तर—लोग पागल कहें तो कहने दो। आप कहें कि हमें तो दोनों बातें रखनी हैं। व्यवहार भी ठीक रहना चाहिये? इसके लिये नाटकका उदाहरण बहुत ठीक है।

जैसे नाटकमें पुत्र राजा बनता है, पिता सिपाही बनता है तो नाटकमें दिखानेके लिये वह पुत्र, अपने पिताको आदेश देता है, डाँटता है, फटकारता है, परन्तु मनमें अपने पिताके प्रति जो आदरभाव है, उसमें कोई व्यवधान नहीं आता है। नाटकमें तो व्यवहार हम स्वाँगके अनुसार ही करते हैं, लेकिन भीतरमें हम समझते हैं कि यह हमारा लड़का है या हमारा पिता है। इसी प्रकार व्यवहार तो नाटककी तरह करें, परन्तु भीतरकी वृत्ति यह

रहे कि सबमें परमात्मा हैं—हर समय यह भाव दृढ़ रखे। कुत्तेके साथ वैसा व्यवहार करना चाहिये जैसा उसके साथ करना उचित है, गौके साथ गौ जैसा और मनुष्यके साथ मनुष्य जैसा व्यवहार करें। भीतरमें वही भाव रखें—

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ (गीता ७। १९)

सब कुछ वासुदेव ही है, इस प्रकार मेरेको भजता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है।

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनञ्जय। (गीता ७। ७)

हे धनंजय! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है।

एक भगवान्का भक्त था। वह नित्य प्रति भगवान्की पूजा किया करता था। बगीचेसे पुष्प लाता, बड़े प्रेमसे पूजा करता। एक दिन भगवान्की पूर्ण दया हो गयी, उसे सर्वत्र भगवान् दीखने लगे। प्रातःकाल उठा, पूजाके लिये पुष्प लाने गया, तुलसीका पत्ता तोड़ने लगा तो उसे उसमें भगवान् दीखे, पत्ते-पत्तेमें भगवान् दीखे। वृक्ष भी भगवान् हैं, तुलसीदल भी भगवान् हैं, भगवान्को कैसे तोड़ें? पुष्प लेने आगे बढ़ा तो गुलाबके वृक्षमें भगवान्, पुष्पमें भगवान्, जहाँ जाये, वहाँ भगवान्। उसने सोचा—यह तो भगवान्-पर चढ़ा हुआ ही है। इसको यहाँसे तोड़कर भगवान्पर क्यों चढ़ाऊँ? चढ़ी हुई सामग्रीको यहाँसे ले जाकर क्या चढ़ाऊँ? जल देखा तो जलमें भी भगवान्, बाल्टी भगवान्, आखिर गुरुजीसे पूछा—क्या करूँ? मेरी पूजा तो बंद हो गयी?

गुरुजीने कहा—तुम्हारी पूजा सफल हो गयी।

जिस प्रकार गोपियाँ सर्वत्र भगवान्को देखती थीं, इसी प्रकार हमें सर्वत्र भगवान्का दर्शन करना चाहिये। गोपियोंके लिये सारा दृश्य दर्पण था। दर्पणमें जैसे हमें हमारा मुख दिखता है, इसी प्रकार उन्हें सर्वत्र भगवान्का मुख दिखता था। जैसे काँचका

महल हो तो उसमें हमें सर्वत्र हमारा मुख ही दिखेगा, इसी प्रकार सबमें भगवान्‌का रूप देखना चाहिये। गोपियाँ इसी तरह सबमें भगवान्‌को देखती थीं। यह भेद उपासनाकी बात है।

अभेद उपासनावाले महात्मा सर्वत्र आकाशकी तरह भगवान्‌को देखते हैं। वास्तवमें एक सच्चिदानन्द परमात्माके सिवाय कुछ है ही नहीं। वह बुद्धिसे यह निश्चय रखते हैं कि केवल एक परमात्मा हैं। दिखनेवाले पदार्थ मृगतृष्णाके जलकी तरह हैं।

साधारणतया सब आदमी भक्तिमार्गके अधिकारी ही होते हैं।

जो पुरुष अपने शरीरको पुजवाता है या यह चाहता है कि मरनेके बाद मेरे चित्र आदिकी पूजा की जाय, वह महामूर्ख है। वह बड़े अन्धकारमें है।

मूल प्रश्न था—भगवान्‌की स्मृति बराबर कैसे रहे? पुजारी मन्दिरमें भगवान्‌की पूजा करता है, एक हाथसे आरती करता है, एक हाथसे घन्टी बजाता है, दोनों काम करता है, आप नहीं कर सकेंगे। क्या बात है? अभ्यासकी बात है। इसी प्रकार अभ्यास कर लेनेपर दोनों काम (सांसारिक कार्य एवं निरन्तर भगवत्स्मृति) होना भी साधारण बात है।

हम आपलोगोंको व्याख्यान दे रहे हैं। परमात्मा जो सब जगह परिपूर्ण हैं, उसकी ओर भी लक्ष्य रखनेका प्रयास कर रहे हैं, फिर भी मेरे व्याख्यान देनेमें कोई रुकावट नहीं आती। हम यह तो नहीं कहते कि हमारे निरन्तर भगवान्‌की स्मृति रहती है, पर हो तो सकती ही है। यदि आप कहें कि हमारे तो नहीं होती तो यही कहा जायगा कि आप प्रयास नहीं करते। प्रयास करेंगे तो क्यों नहीं होगी? अवश्य होगी।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाका त्याग

वास्तवमें जो उच्चकोटिके पुरुष होते हैं, वे इन मान, बड़ाई आदिसे खूब सावधान रहते हैं। वे इस बातको नहीं मानते कि मेरा शरीर पूजने लायक है।

भक्तिकी दृष्टिसे देखा जाय तो भी वही बात है और ज्ञानकी दृष्टिसे भी वही बात है।

भक्तकी कोई पूजा करेगा तो वह रोयेगा। वह सबको नारायण समझता है, फिर नारायणसे पूजा कैसे करवा सकता है? वह समझता है कि नमस्कार, पूजा करने योग्य तो केवल भगवान् हैं। जो झूठे भक्त होते हैं, वे ही भगवान्‌को अलग हटाकर अपनी पूजा करवाते हैं, जैसे नीच सेवक स्वामीका धन स्वयं हड़प जाता है।

बड़ी महत्त्वकी बात है, खूब ध्यान देनेकी बात है कि जो बहुत उच्चकोटिके महापुरुष होते हैं, वे अपने चरणोंका जल दूसरोंको नहीं देते, न अपना चित्र ही देते हैं। इसमें क्या गुप्त रहस्य है, वह आपको बताया जाता है।

प्रसादका क्या फल बताया गया है?—चित्तकी प्रसन्नताका नाम प्रसाद है (गीता २। ६५), ईश्वर और महात्माओंकी दयाका नाम प्रसाद है, ईश्वर और महात्माके लगाये हुए भोगका नाम प्रसाद है। प्रसादका फल होना चाहिये—सारे दुःखोंका अभाव होकर परमात्माकी प्राप्ति हो जाय। तब तो वह प्रसाद है, अन्यथा प्रमाद है।

कोई महापुरुष हैं, उनके चरणोंका जल लिया, परन्तु हमें

प्रवचन दिनांक—६-६-१९४२, गोरखपुर।

उसी समय भगवान्‌की प्राप्ति नहीं हुई तो हम महात्माओंके, शास्त्रके कलंक लगाते हैं। लोग कहेंगे—शास्त्र मिथ्या हैं। ये महात्मा कहाँ हैं? इनके चरणोंका जल पी लिया, कुछ भी तो लाभ नहीं हुआ। जैसे कल थे, वैसे ही आज हैं।

महात्मा इस प्रकार क्यों करायेगा? शिष्य यदि पात्र हो, तब तो वह महात्मा ही बन जाता। महात्मा यदि सच्चा ईश्वरका भक्त है तो वह इस बातको कैसे सहन कर सकता है कि उसके चरणोंका जल दूसरा ले। महात्मा अपने चरणोंकी रज, चरणोंका जल इसलिये नहीं लेने देते कि हमारे कलंक लगे तो भले ही लगे, पर शास्त्रोंके कलंक नहीं लगाना चाहिये, इसलिये वे अपने चित्रको नहीं पुजवाते। वे समझते हैं कि हमारे स्पर्श किये हुए जलमें क्या विशेष बात है? भगवान्‌के सच्चे भक्त भगवान्‌को ही पुजवाते हैं। वे कहते हैं—भगवान्‌की पूजा करो, उनके चरणोंका जल लो तो कल्याण होगा। अच्छे महापुरुष अपनेको नहीं पुजवाते। जो पुजवाते हैं, वे महात्मा नहीं हैं। हम पुत्रको उसके माता-पिताकी सेवा करनेके लिये मना नहीं करते, स्त्रीको अपने पतिकी सेवा करनेकी मनाही नहीं करते, शिष्यको अपने गुरुकी पूजा करनेकी मनाही नहीं करते, परन्तु वे अपनेको महात्मा न समझें।

महात्मा पुरुष मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाको विष्ठाके समान समझकर उस मार्गसे नहीं जाते। एक भाईको समझना चाहिये कि मानके योग्य एक भगवान् ही हैं। अपने शरीरको सबके चरणोंकी धूलि समझना चाहिये। अपनेको तुच्छ समझे और यह समझे कि यह शरीर तो नष्ट होनेवाला है, इसकी हड्डियाँ एक दिन ठोकर खाती फिरेंगी। इस प्रकार सबके चरणोंकी धूलि बनकर विचरे।

इसपर भी कोई उसका मान कर देता है तो उसे बड़ा संकोच होता है।

एक विरक्त पुरुष थे, नगरकी ओर जा रहे थे, लोगोंने उनको दण्डवत् प्रणाम किया, उन्होंने भी उसी प्रकार दण्डवत् प्रणाम किया। लोगोंने कहा—महाराज! आप हमारेपर भार क्यों चाहते हैं?

महाराजने कहा—आप भी मेरे भार चढ़ाते हैं।

लोगोंने कहा—महाराज! आप त्यागी हैं।

महाराजने कहा—आप मेरेसे बढ़कर त्यागी हैं।

लोगोंने पूछा—यह कैसे?

महाराजने कहा—सबसे बढ़कर क्या चीज है?

लोगोंने कहा—परमात्मा हैं।

महाराजने कहा—मैं त्यागी कैसे हुआ?

लोगोंने कहा—आपने कंचन, कामिनी, भोग-पदार्थोंका त्याग कर दिया।

महाराज—ठीक है। क्या मैंने ईश्वरका भी त्याग कर दिया है?

लोगोंने कहा—नहीं, ईश्वरका त्याग कहाँ किया है? उसे तो पकड़ रखा है।

महाराज—आपने बड़ी चीजका ही त्याग किया है। आप बड़े त्यागी हैं इसलिये आप नमस्कार करने लायक हैं।

लोगोंने कहा—हम आपको महात्मा समझकर प्रणाम करते हैं।

महाराजने कहा—महात्माका लक्षण सुना है क्या?

लोगोंने कहा—सुना है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७। १९)

बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।

महाराजने कहा—ठीक है। मैं तो महात्मा नहीं हूँ, पर तुम कहते हो तो ठीक है। महात्माकी बुद्धि होती है—सबमें परमात्माके दर्शनकी; मैं तुम्हें परमात्मा समझकर प्रणाम करता हूँ।

जो अपनेको श्रेष्ठ मानता है, पूज्य समझता है, वह महात्मा नहीं, महा-तमा है, यानी महान् तमोगुणी है, बहुत नीचे दर्जेका है। यह हम किसके लिये कह रहे हैं? जो अपनी आत्माका कल्याण चाहे, उसके लिये और जो कल्याणको प्राप्त हो चुके हैं।

मान, बड़ाई तुम्हारे लिये बड़ी ही घातक हैं। उच्चकोटिके साधक इसे घातक समझते हैं, परन्तु जो इसके प्राप्त होनेपर प्रसन्न होते हैं, वे इसमें फँस जाते हैं और डूब जाते हैं। मान, बड़ाई स्वीकार करना गलेमें पत्थर बाँधकर डूबना है। मान, बड़ाईको मृत्युसे भी बढ़कर समझना चाहिये। मान, बड़ाईसे डरकर भागना चाहिये। मृत्युसे डरनेकी आवश्यकता नहीं है। कोई अपनेको ज्ञानी मानता है और इस मान्यतासे अपनेको पुजवाता है, वह महा-अज्ञानी है, ज्ञानी नहीं है। देहकी पूजासे प्रसन्न होता है तो सम-बुद्धि कहाँ हुई? ज्ञानीका लक्षण देखें—

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥

(गीता १४। २५)

जो मान और अपमानमें सम है, मित्र और वैरीके पक्षमें भी सम है एवं सम्पूर्ण आरम्भोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित है, वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है।

यह दीवाल है, इसका चाहे कोई मान करो, चाहे अपमान। इसी प्रकार देहमें चेतनके रहते हुए जो मान-अपमानमें सम रहता है, वही जीवन्मुक्त है। मुर्देके लिये मान-अपमान समान है, इसी प्रकार जीते हुए ही जो मर चुका है, वही जीवन्मुक्त है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

(गीता ६। २९)

सर्वव्यापी अनन्त चेतनमें एकीभावसे स्थितिरूप योगसे युक्त हुए आत्मावाला तथा सबमें समभावसे देखनेवाला योगी आत्माको सम्पूर्ण भूतोंमें बर्फमें जलके सदृश व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें देखता है, अर्थात् जैसे स्वप्नसे जगा हुआ पुरुष स्वप्नके संसारको अपने अन्तर्गत संकल्पके आधार देखता है, वैसे ही वह पुरुष सम्पूर्ण भूतोंको अपने सर्वव्यापी अनन्त चेतन आत्माके अन्तर्गत संकल्पके आधार देखता है।

सर्वत्र समान भावसे देखनेवाला आत्माको सब भूतोंमें समान देखता है और सुख-दुःखमें भी समान देखता है। उसके अपने और दूसरेके शरीरमें भेद नहीं है। जिसकी इस प्रकारकी बुद्धि हो, वह कैसी किसीसे पूजा करवा सकता है? वह समझता है कि शिव, राम और कृष्ण मेरेसे अभिन्न हैं। वह अपनेको उनसे अलग नहीं समझता है, फिर वह शिव, राम और कृष्णकी ही पूजा करवायेगा, अपनी पूजा वह किस आधारपर करायेगा?

अच्छे पुरुष सब लोगोंकी आँखें खोलनेके लिये ही होते हैं।

अच्छे पुरुष ही मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा स्वीकार करेंगे तो उनमें तथा औरोंमें क्या अन्तर रहेगा? मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा त्याज्य हैं—यह पाठ फिर और कौन पढ़ायेगा? जो स्वयं मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाका त्याग करेंगे, वे ही पुरुष तो आदर्श होंगे। अच्छे पुरुषोंको यह बात करके दिखला देनी चाहिये।

जो उच्चकोटिके पुरुष समझे जाते हैं और मान, बड़ाईको स्वीकार कर रहे हैं, उनकी यमराजके यहाँ खबर ली जायगी।

महापुरुषोंका यह कर्तव्य है, उन्हें यह दिखला देना चाहिये कि मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाका त्याग ही वास्तविक वस्तु है। जिन्हें मान, बड़ाई प्राप्त नहीं है, वे क्या त्याग करेंगे? जिसके मान, बड़ाईकी बौछार होती है, परन्तु वह उसके निकट नहीं जाता, वही हमें पाठ पढ़ा सकता है कि मान, बड़ाई त्यागने योग्य हैं।

किसीकी स्त्री सेवा करती है, पर उसे प्रेमसे समझाकर वह उससे सेवा नहीं लेता, वही आदर्श पुरुष है।

घरमें स्त्री रहते हुए भोग नहीं करना—यह तो खण्डेकी धार है। एकान्तमें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करना भी उत्तम है, पर वह तो बहुत ही प्रशंसनीय है, जो स्त्रीके साथ रहते हुए भी ब्रह्मचर्यका पालन करे।

जहाँ गुलाबजलकी बोतलें छिड़की जा रही हैं, वह महात्मा पुरुष वहाँसे भागता है, वह देखता है कि पेशाबकी बौछारें आ रही हैं, वह वहाँ जाना ही नहीं चाहता। विरक्त होकर वह अपने वैराग्यको प्रकट करना भी नहीं चाहता और वहाँसे हटना भी चाहता है। हजारों व्यक्ति किसीको प्रणाम करते हैं और वह अपनेको बड़ा मानता है तो समझ लो कि वह ईश्वरके यहाँ बड़ा

नहीं है, किन्तु जो मान, बड़ाईको न भीतरसे चाहता है और न बाहरसे—वही बड़ा है।

ये गुलाबजामुन हैं, हमने सोचा कि लोगोंको दे दें। फिर मालूम पड़ा कि ये लोग हमें महात्मा समझकर प्रसाद लेंगे तो हमारा कर्तव्य है कि हम वह प्रसाद रूपमें नहीं दें। यदि हम देते हैं तो सबका कल्याण होना चाहिये। नहीं होगा तो हम शास्त्रके कलंक लगा रहे हैं।

आपसमें हम आपको भोजन करवाते हैं, आप हमें भोजन करवाते हैं, उसमें कोई दोष नहीं है, क्योंकि उसमें हमारे ऊपर कोई आक्षेप नहीं कर सकता है। महात्मा बनकर प्रसाद देते हैं तो शास्त्रोंके और महात्माओंके कलंक लगाते हैं।

एक बड़ी गुप्त बात बताता हूँ। जैसे बिजलीके करेन्टको छूनेसे सारे शरीरमें सनसनी हो जाती है, स्त्रीको छूनेसे कामीके काम व्याप्त हो जाता है, इसी प्रकार ईश्वरको छूनेसे प्रेमकी लहरें उठनी चाहिये। महात्माको छूनेसे भी वही बात होनी चाहिये न हो तो कोई कारण होना चाहिये। वह महात्मा ही यदि वास्तवमें महात्मा नहीं है तो हमारे क्या करेन्ट दौड़ेगा? या हम अश्रद्धा रूपी काठपर खड़े हैं तो करेन्ट नहीं दौड़ेगा।

जो पदार्थ जैसा है, उसका वैसा प्रभाव पड़ेगा। आगको छुएँगे तो उसके गर्म परमाणु हमारे शरीरमें प्रवेश करेंगे, इसी प्रकार ईश्वरको छूनेसे ईश्वरके परमाणु, महात्माको छूनेसे महात्माके परमाणु प्रवेश करेंगे।

यहाँ यह लालटेन है। यहाँसे कोई ले गया तो प्रकाश चला गया, इसी प्रकार महात्मा पुरुष हैं, वे चले गये तो अन्धकारकी तरह प्रतीत होगा।

महात्माके दर्शनसे परमात्माकी स्मृति होनी चाहिये। महात्माओंके पास दैवी-सम्पदा रूपी धन रहता है—क्षमा, शान्ति, दया आदि उत्तम गुण, उत्तम आचरणोंका उनमें समूह रहता है। जैसी चीज होती है, वैसा उसका प्रभाव पड़ता है। हमारे हृदयमें अच्छी स्फुरणा होती है तो समझना चाहिये कि किसी महात्माका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है और दूषित भाव होते हैं तो समझना चाहिये कि हमारे आसपास कोई खराब पुरुष है। जिसके पास जो चीज होती है, उसका प्रभाव पड़ता है।

और एक सूक्ष्म बात है—हमलोगोंके हृदयमें सूक्ष्म दोष ऐसे प्रवेश करके रहते हैं जैसे प्लेगके परमाणु। मैंने पूछा—कैसी बात सुनायी? आपने कहा—बहुत अच्छी। इसे सुनकर मुझे प्रसन्नता होती है तो समझना चाहिये कि मुझमें मान, बड़ाई प्रतिष्ठाकी चाह है।

मैं कहूँ कि इस प्रकारकी बात आपको कहीं नहीं मिलेगी। जो मान, बड़ाईको नहीं चाहता है, वहींपर ऐसी बात आपको मिलेगी। इसका क्या तात्पर्य है? मैं मान, बड़ाई प्रतिष्ठा चाहता हूँ।

व्याख्यान देकर भी निर्लेप रहे, उसके अभिमान नहीं आये, वही श्रेष्ठ पुरुष है।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

पुरुषोंकी सीढ़ी-दर-सीढ़ी श्रेणियोंका वर्णन

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥

(गीता ४। ४०)

विवेकहीन और श्रद्धारहित संशययुक्त मनुष्य परमार्थसे अवश्य भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे संशययुक्त मनुष्यके लिये न यह लोक है, न परलोक है और न सुख ही है।

ये तीन दोष जिसमें हैं—(१) जिसमें श्रद्धा नहीं है, (२) समझ नहीं है, (३) संशय-ही-संशय भरा हुआ है, उससे नीचा कोई नहीं है।

इससे भी नीचे पुरुष वे हैं—जो पापी हैं, झूठ, कपट और चोरी करनेवाले हैं। भगवान्‌की दृष्टिमें भी पापीसे भी अधिक नीच वे हैं, जो ईश्वरको मटियामेट करना चाहते हैं। ईश्वरको मिटाया तो नहीं जा सकता। अन्य बातें असम्भव भी सम्भव हो सकती हैं, किन्तु यह असम्भव सम्भव नहीं हो सकता कि ईश्वरकी सत्ता ही समाप्त हो जाय।

बालूमेंसे तेल निकलना असम्भव है, जलमें घी निकलनेकी सम्भावना नहीं है, किन्तु ऐसी असम्भव बातको भी भगवान् सम्भव कर सकते हैं, वे सूर्यको शीतल बना सकते हैं, किन्तु ईश्वरका अभाव नहीं हो सकता। वास्तवमें सत् वस्तुका अभाव करनेकी ईश्वरमें भी शक्ति नहीं है। ईश्वर मिटे तो ईश्वरका विधान मिटे। वह विधान ईश्वरके साथ ही है। ईश्वरका विधान कहो, चाहे धर्म कह दो। ईश्वर, धर्म और उसका विधान कभी

प्रवचन दिनांक—२७-११-१९४५

मिटनेका नहीं है। इसलिये भगवान्‌ने गीतामें कहा है—शाश्वत धर्म मेरा स्वरूप ही है। शाश्वत धर्म ही सनातन धर्म है—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥

(गीता १४। २७)

उस अविनाशी परब्रह्मका और अमृतका तथा नित्यधर्मका और अखण्ड एकरस आनन्दका मैं ही आश्रय हूँ अर्थात् उपर्युक्त ब्रह्म, अमृत, अव्यय और शाश्वतधर्म तथा ऐकान्तिक सुख—यह सब मेरे ही नाम हैं, इसलिये इसका मैं परम आश्रय हूँ।

सच्चिदानन्द ब्रह्म और ऐकान्तिक सुख—यह एक ही चीज हुई। किन्तु धर्म तो क्रिया रूप है, उसके लिये बताया कि उसका कभी विनाश नहीं हो सकता। ईश्वर और ईश्वरका कानून उसके साथ ही है। कितने ही व्यक्ति चाहे मतदानके द्वारा ईश्वरकी सत्ताको न मानें, ईश्वर देखता है कि ये कैसे मूर्ख हैं, मतदानके द्वारा मेरी सत्ताको नकार रहे हैं। यों नहीं समझते कि तुम्हारा अस्तित्व किसके आधारपर है?

नास्तिक लोग पाप करनेवालेसे भी अधिक पापी हैं। उन नास्तिकोंसे भी अधिक पापी वे हैं, जो धर्म-ध्वजी (पाखण्डी) हैं। नास्तिक तो अपनी नास्तिकताकी ध्वजा फड़काता है, उसके धोखेमें तो कोई नहीं आयेगा, किन्तु वह धर्मध्वजी तो धर्मात्माका वेश धारण करके पाप करता है। ऐसा पुरुष बहुत नीच कोटिका है। ऐसे पुरुषसे बात भी नहीं करनी चाहिये। उसका दर्शन भी हानिकर है। जैसे—उच्चकोटिके महापुरुषके दर्शन, स्पर्श, भाषण लाभदायक हैं, वैसे ही ऐसे पाखण्डी पुरुषोंके दर्शन, भाषण हानिप्रद हैं। ऐसे पुरुष मार्गमें मिल जायँ तो आँखें

बंद कर लेनी चाहिये।

अश्रद्धालुसे श्रेष्ठ सकामी हैं। उनसे वे श्रेष्ठ हैं, जो लौकिक सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। उनसे वे श्रेष्ठ हैं, जो कामनाके लिये नहीं, अपितु संकट निवारणके लिये भगवान्‌को भजते हैं, भजन-ध्यान करते हैं। उनसे वे श्रेष्ठ हैं, जो काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओंको मारनेके लिये भजन करते हैं।

उनसे वे श्रेष्ठ हैं, जो अपनी आत्माके कल्याणके लिये चेष्टा करते हैं। इन जिज्ञासुओंसे भी वे श्रेष्ठ हैं, जो भगवान्‌का भजन निष्काम भावसे करनेवाले हैं।

जिज्ञासुओंसे निष्कामीको श्रेष्ठ क्यों बतलाया गया? इसलिये कि जिज्ञासु मुक्ति तो चाहते हैं, किन्तु जो केवल भगवान्‌को ही चाहते हैं, भगवान्‌का प्रेम चाहते हैं, वे स्वाभाविक ही श्रेष्ठ हैं।

उनसे भी वे श्रेष्ठ हैं, जो अपना कर्तव्य मानकर भगवान्‌से प्रेम करते हैं, चाहते कुछ नहीं; जो होता है, देखते रहते हैं। वे कहते हैं—ईश्वरसे किसी तरहकी प्रार्थना-याचना करनेकी आवश्यकता नहीं है। ईश्वरकी महिमा गाते हैं, ईश्वरके नाम, गुण, प्रभाव, तत्त्वको गाते हैं, सुनते हैं और साधन करते हैं। सच्चे निष्कामी वे ही हैं।

इनसे भी श्रेष्ठ वे हैं, जिनको परमात्माकी प्राप्ति हो चुकी है। उनसे भी वे श्रेष्ठ हैं, जिनको ईश्वरने कुछ विशेष अधिकार दे दिया है। ऐसे जीवन्मुक्तोंमें भी वे महापुरुष श्रेष्ठ हैं, जो ईश्वरके भेजे हुए उनके परमधामसे यहाँ आते हैं, जिन्हें हम कारक पुरुष कहते हैं।

उनसे भी वे श्रेष्ठ हैं, जो सदा ही ईश्वरके पासमें रहते हैं। ईश्वर अवतार लेते हैं तो उनके परिकर बनकर आते हैं, फिर जब

भगवान् जाते हैं तो वे उनके साथ ही चले जाते हैं।

उनसे भी श्रेष्ठ परमात्मा हैं। परमात्मासे श्रेष्ठ कोई है ही नहीं।

आज जो अभक्त हैं, उनसे लेकर परमात्मा तक विस्तारसे सब बातें कही कि सीढ़ी-दर-सीढ़ी कौन बड़ा है, कौन छोटा है।

इस प्रकार जो यह क्रम बतलाया, भेद बतलाया, ऐसे भेदमें भी जो अभेद समझते हैं, संसारमें वे ही महापुरुष हैं—

समबुद्धिर्विशिष्यते। (गीता ६। ९)

जो सबमें समान भाववाला है, वह अति श्रेष्ठ है।

हमें ऐसा ही बननेकी चेष्टा करनी चाहिये कि सबमें समभाव रखनेवाले बनें।

आप शास्त्रकी बातों, महात्माओंकी बातोंका आदर नहीं करते। आदरका तात्पर्य यह है कि कोई मूल्यवान् बात प्राप्त होती है तो उसी दिन धारण होनी चाहिये।

लोभी जिसमें अपना लाभ देखता है, उसे झट धारण कर लेता है। झूठा जमा-खर्च करनेको भी तैयार हो जाता है; झूठ, कपट करनेको तैयार—बस, रुपया मिलना चाहिये। परन्तु साधकका इसी प्रकारका भाव होना चाहिये कि कहो सो करें, ईश्वर मिलना चाहिये। वे रुपयोंके एकनिष्ठ भक्त हैं। ईश्वरमें एकनिष्ठा कैसी होनी चाहिये—यह उन रुपयोंके लोभियोंसे सीखनी चाहिये। पतिव्रता स्त्रीमें भी ऐसी एकनिष्ठा नहीं मिलेगी। उनके एक ही व्रत है कि रुपया मिलना चाहिये। इसी तरहकी एकनिष्ठा भगवान्‌में होनी चाहिये, फिर देखो—भगवान्‌के मिलनेमें विलम्ब है क्या?

संसारमें नाना प्रकारके मत-मतान्तर हैं। तुलसीदासजीने कहा

है—जब कलियुग आयेगा तो संसारमें नाना प्रकारके मत-मतान्तर हो जायँगे, वास्तविक मार्ग छिप जायँगे। आज किसको सही मार्ग कहें? एक-एककी दृष्टिसे दूसरे गलत हैं। इस प्रकार संसारमें नाना मत-मतान्तर होनेसे मामला गड़बड़ है। असली वस्तु तो एक है, मार्ग नाना हो सकते हैं, किन्तु वस्तु नाना नहीं है। असली सिद्धान्त कौन समझता है? भगवान्से प्रार्थना करें कि भटकाओ मत।

भगवान् कहें कि मूर्ख! मैं भटकाता हूँ क्या?

आप तो नहीं भटकाते, भटकानेवाले तो हमारे कर्म हैं, आप तो इन्जिन चलानेवाले हो। हमारा पट्टा* उतार दीजिये। इन्जिन माया है, घुमानेवाले इन्जिनीयर आप हैं। आप हमारे गलेसे पट्टा अलग कर दें तो सब काम ठीक हो जाय।

भगवान् कहें कि हम कहाँ घुमाते हैं?

आपने ही गीतामें कहा है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

(गीता १८। ६१)

शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार भ्रमाता हुआ सब भूतप्राणियोंके हृदयमें स्थित है।

आपने ही गीतामें कहा है—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८। ६२)

* बिजलीकी मोटरसे यन्त्रको चलानेके लिये एक बेल्ट लगा रहता है।

हे भारत! सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो, उस परमात्माकी कृपासे ही परम शान्तिको और सनातन परम धामको प्राप्त होगा।

नाना प्रकारके प्रचारक हैं, नाना भेद हैं, यह संसारमें कैसे हुए? इनका उत्पादक कौन है?

कलियुग।

इस समयका राजा?

कलियुग।

उसकी चल क्यों रही है?

चलनेके कारण हैं अज्ञान, अहंकार और स्वार्थ, मूल जड़ ये हैं। ये सब जगह कलियुगकी गुप्त पुलिस हैं। इनको मार डालो तो काम ठीक हो जाय। फिर तो कलियुग मरा ही पड़ा है।

आप कहें कि ये सुननेवालोंपर अधिकार जमा लेते हैं, क्या वक्ताओंपर भी जमा लेते हैं?

हाँ, उनपर भी जमा लेते हैं; क्योंकि उनमें भी स्वार्थ और अहंकार रहता है। जिनमें यह नहीं रहता है, उनपर कलियुगकी नहीं चलती।

जिनमें स्वार्थ नहीं, अहंकार नहीं, मैं नहीं, अज्ञता नहीं, उनके द्वारा तो प्रचार होना चाहिये?

जहाँ अज्ञान नहीं, स्वार्थ नहीं, अहंकार नहीं है, उनके मनमें, इस विषयकी न इच्छा है, न आग्रह है, न हठ है, न विरोध है। समता है, निर्भयता है, बुद्धि स्थिर है, गम्भीरता है, धीरता है, निश्चिन्तता है, वीरता है। पश्चात्ताप नहीं, वहाँ भय नहीं, यह सब कुछ नहीं। वहाँ परवाह नहीं।

भजन-ध्यान बढ़े या घटे। क्षतिमें शोक नहीं, वृद्धिमें प्रसन्नता

नहीं। वहाँ समता है, निर्भीकता है। अटल है, अविचल है।

विचलता क्या?

भरमानेसे भ्रमित न हो हटानेसे हटे नहीं। कोई विघ्न नहीं डाल सकता। यमराजका भय नहीं, मृत्युका भय नहीं, ईश्वरका भय नहीं, सरकार भय नहीं, बे-परवाह है, निरहंकार है। वहाँ अज्ञान नहीं है, वहाँ स्वार्थ नहीं है।

जहाँ अज्ञान नहीं है, स्वार्थ नहीं है, वहाँ क्या है?

-वहाँ समता है, शान्ति है, प्रसन्नता है, निर्भीकता है, गम्भीरता है।

गम्भीरता कैसे?

-जैसे समुद्र गम्भीर है, इसी तरह उनके हृदयका भाव गम्भीर है। दूसरा नहीं जान सकता। वे बतावें तो ही जाना जाय। धीरता है कि सारा संसार उनके विपक्षमें हो तो भी वे विचलित नहीं होते। समता ऐसी है कि विषमताकी गुंजाइश ही नहीं। शास्त्रकी दृष्टिसे खूब प्रचार हो तो हर्ष नहीं। उसका विरोध हो तो कोई पश्चात्ताप नहीं, चिन्ता नहीं—

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्‌क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥

(गीता १२। १७)

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है—वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है।

आरम्भ करते हुए-से प्रतीत होते हैं, किन्तु उनका आरम्भ आरम्भ नहीं। अनुकूलतामें राग, हर्ष और प्रतिकूलतामें शोक, द्वेष स्वाभाविक ही मनुष्योंमें होते हैं, किन्तु उनमें नहीं होते।

फिर पहचानना कठिन क्यों है?

पहचानना इसलिये कठिन है क्योंकि उनके द्वारा राग, द्वेष, हर्ष, शोककी क्रिया होती है, परन्तु वास्तवमें नहीं है, इसलिये पहचानना कठिन है।

फिर इसमें दम्भी, पाखण्डियोंकी भी दाल गलेगी?

–गलती ही है।

फिर दम्भी, पाखण्डियोंकी और वास्तविक महात्माकी पहचान कैसे हो?

–ईश्वरसे प्रार्थना करे—हे गोविन्द! हे नाथ!! आप दर्शन नहीं दें तो कम-से-कम वास्तविक महात्मासे ही मिलन करवा दें।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

नित्य नियमसे अपने घरमें स्वाध्याय, भगवत्‌चर्चा करें

हमलोगोंको महात्मा बनना चाहिये। मेरे हाथकी बात होती तो अभीतक महात्मा बना ही देता, बाकी थोड़े ही रखता। मेरे हाथकी बात नहीं है। भगवान् सब कुछ कर सकते हैं। उनके शरण होकर उनसे प्रार्थना करनी चाहिये, यही अच्छा उपाय है। प्रभुसे पुकार लगानी चाहिये। लोग कहते हैं—भगवान्‌का दर्शन करा दें, किन्तु बात-ही-बात करते हैं, कोई चाहता नहीं। चाहना कैसी होनी चाहिये? चाहनाके अनुसार लगन होगी—

लगन लगन सब कोई कहै लगन कहावै सोय।
नारायण जा लगन में तन मन दीजे खोय॥

यह तो बहुत ऊँची लगन है। रुपयोंके लिये जैसी लगन है, ऐसी लगन हो जाय तो भी काम बन जाय।

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम॥

(रा० च० मा० उत्तरकाण्ड दोहा १३० ख)

किसीको महात्मा बनना हो तो महात्माको लक्ष्य रखकर साधन करना चाहिये। महात्मा पुरुष कैसे होते हैं, इसका बार-बार विचार करना चाहिये। गीताके बारहवें अध्याय, चौदहवें अध्यायमें जो लक्षण लिखे हैं, इन्हें अपनेमें घटाना चाहिये। इतनी बात समझमें नहीं आये तो एक समताको अपनेमें उतार लें तो सब काम हो जाय। सबमें सम—स्तुति-निन्दामें सम, मान-

---

प्रवचन दिनांक—२८-११-१९४५

अपमानमें सम; एक समता आपमें घट जाय तो भगवान् कहते हैं कि मैं सब क्षमा कर दूँगा। विषमतामें रात-दिन जूते पड़ते हैं। घरमें आसक्त पुरुषके रात-दिन जूते पड़ते हैं, किन्तु फिर भी आसक्ति नहीं छोड़ते।

कोई व्यक्ति अनुचित तरीकेसे धनार्जन करता है,मैं उसका विरोध ही करता हूँ। हमारे भाग्यमें जितना पैसा होगा, स्वतः ही आ जायगा, छप्पर फाड़कर भगवान् दे देगा, किन्तु कोई सुनते ही नहीं। डटकर रहे कि हम अनुचित रीतिसे धनार्जन नहीं करेंगे, जो आना होगा, वह स्वतः ही आ जायगा। क्या बताया जाय, कुछ समझमें नहीं आता है। ईश्वरकी माया अलौकिक है।

भगवत्प्राप्तिके विषयमें अपने सहारेकी बात नहीं है। भगवान्की प्राप्तिका करार नहीं करते। कितना जमाना बीत गया, यह जमाना भी चला जायगा, हमलोग भी चले जायँगे। यह निश्चय कर ले कि या तो मर मिटेंगे या इसको करेंगे, तब काम चले, नहीं तो बड़ी कठिनाई है। कलियुगसे लड़ाई लड़नी है।

जैसे उस दिन कहा था—घरमें आधा घण्टा सत्संगकी पुस्तकें पढ़ो। और समय भले ही रुपया कमाईमें लगाओ, परन्तु कम-से-कम आधा घण्टा इकट्ठा होकर भगवत्-चर्चा करो। इस प्रकार अपना समय नियमपूर्वक बितावें। नियम कर लें कि यह नहीं होगा तो भोजन नहीं करेंगे। भोजनवाली शर्त बड़ी कड़ी है। यदि किसीको अपना सुधार करना हो तो यह शर्त लगा दे कि भोजन नहीं करेंगे। वह काम स्वयं ही होगा, अवश्य होगा। जिस दिन नहीं हो, भोजन मत करो।

आपलोग उचित समझें तो यह कार्य आजसे ही अपने घरमें आरम्भ कर दें। इससे घर बैठे ही भक्ति, ज्ञान, वैराग्य,

सदाचारका ज्ञान हो जाता है। इससे अवश्य लाभ होता है। काममें लेकर देख लो, घाटेकी चीज नहीं है। घाटा दीखे तो छोड़ दो। अकेला हो तो अकेला ही स्वाध्याय कर ले। गीता तत्त्वविवेचनी, भागवत, महाभारत, पद्मपुराण, रामायण, सत्संगकी पुस्तकें आदिका अध्ययन करो। एकका अध्ययन समाप्त हो जाय तो दूसरी आरम्भ कर दो। समयका कोई बंधन नहीं, जिसको जब सुविधा हो, करो। यह भी नहीं कि पूरी उम्र तक करो। थोड़ा करके देखो, लाभ हो तो और बढ़ाओ।

परमात्माकी प्राप्ति कठिन है ही नहीं, सीधी-सी बात है, किन्तु वह सीधी-सी भी करनेसे ही होगी। भोजन सब जुटा दो तो भी खानेवाला काम तो खानेसे ही होगा। यह हो नहीं सकता कि खाये दूसरा, पेट तुम्हारा भर जाय। बगीचा लगाया, आम लगाया, लाकर रख दिया, चाकू रख दिया, छील-सुधार कर रख दिया, उसे खाना तो तुमको ही होगा। उठाओ, मुँहमें डालो। पुस्तकें बनाकर रख दी, उन्हें आप पढ़ो। आमके टुकड़ेकी तरह पुस्तकें गीताप्रेसमें पड़ी हैं। लिस्ट बनाकर दे दो तो घर पहुँचा दें। पढ़नी तो आपको ही होगी। पुस्तक सामने रख दी, पढ़नी तो आपको ही पड़ेगी। यहाँ सत्संग होता है। यहाँ तो स्वतन्त्रता ही है, कोई भी आओ। गोपियोंवाली बात थोड़े ही है कि कोई नहीं आ सकता।

कम-से-कम स्वाध्याय तो आरम्भ कर ही देना चाहिये।

दो बात आज बतायी—एक तो अपनेमें समता उतारनी चाहिये। दूसरी यह कि अपने घरमें स्वाध्याय करना चाहिये। सब इकट्ठे होकर सुनें और एक सुनावे।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा पतन करानेवाली हैं

वास्तवमें यदि मान-बड़ाईसे घृणा हो तो आत्माका कल्याण हो। हृदयमें जबतक मान-बड़ाईकी थोड़ी भी इच्छा है, तबतक किसी-न किसी प्रकारसे स्वीकार हो ही जाती है। पर-स्त्रीका दर्शन, भाषण सब पापमय है, पर जब अपने मनकी आसक्ति पर-स्त्रीमें है तो बुरी समझते हुए भी यदि वह आकर प्राप्त होगी तो दृष्टि बलात् चली ही जायगी। यह घातक है, मृत्युकी तरह है, मौत है। उससे भय हो जाय तो काम चले या परमात्मामें अनन्य प्रेम हो जाय तो काम चले, वह अटका ले।

साधारण व्यक्ति, जो लोभमें फँसे हुए हैं, उन्हें बड़ा लोभ दिखावे तो छोटा लोभ छूट जाय। परमात्माके ध्यानमें जो आनन्द है, वह त्रिलोकीके सुखमें नहीं है—यह विश्वास हो जाय तो यह छोटा लोभ छूट जाय। राजलक्ष्मा (टी०बी०)* का रोग कटना जैसे कठिन होता है, इसी प्रकार मान-बड़ाईका रोग कठिन है। उस रोगमें जैसे सौमेंसे निन्यानवे मरते हैं, इसी प्रकार यह मान-बड़ाईकी बीमारी है। चेष्टा करनेपर भी अधिकांश इससे बच नहीं पाते। किसी विरलेकी ही बीमारी मिटती है। यह बीमारी बलात् चिपकनेवाली है। एक तो स्वतः ही यह बुरी है, फिर दूसरा व्यक्ति सहायक हो जाय तो डूबे ही पड़े हैं।

अपने विचारके द्वारा मान-बड़ाईसे बचें, दूसरे आदमी मान-बड़ाई करने लग जायँ तो कैसे बचें? इसके लिये हर एक भाईको

प्रवचन दिनांक—२९-११-१९४५

* उस समय टी० बी० की चिकित्सा उपलब्ध नहीं थी।

सावधान रहना चाहिये। लोग बहुत भोले हैं। दुजारीजी बहुत भोले हैं। मेरी जीवनी लिखनेके लिये मेरे पीछे पड़े। मैंने बहुत विरोध किया। ऐसे समझो कि मेरे पीछे कोई इस तरहसे पड़ जाय तो यह तो कह नहीं सकते कि मेरेमें कोई कमी नहीं है।

जिन्हें परमात्माकी प्राप्ति हो गयी है, वे मान-बड़ाईको ठुकराते हैं। उनकी दृष्टि ही दूसरी हो जाती है। विष्ठाके पास कोई कैसे जाय? परन्तु जिनके हृदयमें अन्धकार है, उनका पतन हो जाता है।

किसी भी प्रकारकी मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा, सत्कारका आयोजन कोई करे तो वह चाहे मेरा भाई हो, मित्र हो, वह मेरा अपमान ही करता है। यदि मैं परमात्माकी प्राप्तिवाला होऊँ, तब वे मेरा सिद्धान्त समझे नहीं हैं और यदि मैं साधक हूँ तो वे मित्रके रूपमें मेरे शत्रु हैं। मान-बड़ाई बड़े खतरेकी चीज है। यह परमात्माकी प्राप्तिमें भी रुकावट डालनेवाली है। साधकके लिये पतनकी चीज है, महापुरुषोंके लिये कलंक है।

संसारमें जो अध्यात्म-विषयक प्रचार करे, उसके लिये यह रुकावट डालनेवाली चीज है। इसका हृदयसे खूब विरोध करना चाहिये। यह परमात्माकी प्राप्तिमें विलम्ब करनेवाली चीज है। जैसे थोड़ा-सा भी संखिया मार डालनेवाला है, इसी प्रकार यह मार डालनेवाली है। संखियाकी लीक भी खराब है, गन्ध भी नहीं रहनी चाहिये। आगे जाकर अटकानेवाली चीज मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा है।

जो हमारी बात समझकर हमारी मान-बड़ाईमें शामिल नहीं होते, वे हमारे मित्र हैं। मैं यदि चाहूँ भी तो आप मेरेको बचानेकी ही चेष्टा करें। रोगी कुपथ्य करना चाहता है तो घरवाले बचाते

हैं। इससे आप भी बचें, मुझे भी बचायें। आप नहीं बच सकें तो मुझे तो बचा लें। आप मुझे बचानेका प्रयास करेंगे तो मैं आपलोगोंको बचानेका प्रयास करूँगा—**परस्परं भावयन्तः।** आप मेरी उन्नति चाहो, मैं आपलोगोंकी उन्नति चाहूँ तो दोनोंका कल्याण है। आप मुझे गिरानेका प्रयास नहीं करें तो मैं आपकी बड़ी भारी दया समझूँगा। मान, बड़ाई—ये प्रेममें कलंक हैं। ऐसी सभ्यताको नमस्कार ही करे। शरीरकी पूजा तो रूपकी पूजा है। कीर्ति चाहना—नामकी पूजा है।

जहाँ नाम और रूपकी पूजा है, वहाँ अन्धकार-ही-अन्धकार है। मैं यदि मेरी उच्छिष्ट आपलोगोंको नहीं खिलाऊँ, यदि प्रसाद ही दूँ तो भी मेरी बड़ी भूल है। आपको यदि प्रसादका शौक है तो आप भगवान्‌के भोग लगायें और पायें। मेरे हाथसे ही क्यों? मेरे हाथसे देनेसे यदि मुझे आपलोगोंका कल्याण होता दिखता तो मैं आपलोगोंके बिना कहे ही देनेको तैयार हूँ। मैं विज्ञापन करता कि मेरे हाथसे प्रसाद लो और मुक्त होओ, किन्तु मुझे रुपयामें पाई भर भी विश्वास नहीं है कि मुक्त हो जायँगे। फिर यदि मैं लोगोंको प्रसाद बाँटूँ तो ईश्वरके और मेरे-दोनोंके कलंक लगा रहा हूँ। क्योंकि जो लोग भगवान्‌के भोग लगाकर प्रसाद बाँटते हैं, वे समझते हैं कि यह हमारी कल्पना है और एक व्यक्ति किसी पुरुषमें अच्छी कल्पना करके उसके हाथका प्रसाद ले और कल्याण न हो तो वह यही समझेगा कि गीतामें जो यह आया है कि प्रसादसे दुःखोंका नाश हो जाता है—यह केवल बात-ही-बात है। प्रसाद मन्दिरोंमेंसे ले आओ। असली प्रसादका फल जो होना चाहिये, वही हो, तभी उसे प्रसाद कहना चाहिये, नहीं तो मिथ्या है।

मैं हर एक भाईसे प्रार्थना करता हूँ कि आपलोग मुझे बचा ही लेना, कोई धक्का देकर गिरा मत देना। रोगी व्यक्ति कहींपर कुपथ्य कर बैठता है तो उसकी सेवा करनेवाले, सँभाल करनेवाले उसकी रक्षा करते हैं। मैं कुपथ्य करना नहीं चाहता, किन्तु यदि कभी कर बैठूँ तो आप मुझे बचाना ही।

आप यदि कहें कि तू रोगी नहीं है, न कुपथ्य ही करता है? तो फिर आपको मेरी बात माननी चाहिये और यदि मैं भीतरसे चाहता हूँ कि खूब मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा हो तो आपलोग जो अपनी मान्यतामें यह समझते हैं कि मैं एक अच्छा आदमी हूँ—यह भावना हटानी चाहिये। यह बात बड़े मार्केकी है। यह बात किसी जगह नहीं मिलेगी। मेरा हृदयसे इसका बहिष्कार है। यदि किसी जगह मैं स्वीकार करता हूँ तो वह दोष मेरे स्वभावका है। मेरा कहना विवेक-विचारपूर्वक, सूक्ष्मतासे देखकर है, जैसे कोई व्यक्ति ऐकान्तिक मित्रोंको एकान्तकी बात कहे, उसी तरह आपलोगोंको मेरा यह कहना है। जो मान, बड़ाईको गुंजाइश देते हैं, वे अँधेरेमें हैं। यह बात ब्रह्माजी भी आकर मुझे कहें तो मुझे नहीं जँच सकती।

अनुभव और शास्त्र विचार सबके द्वारा मैं इस अनुभव पर पहुँचा हूँ कि अच्छे-अच्छे व्यक्ति भी इस मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाकी घाटीपर आकर अटके हैं। दुनिया विष खाकर मरती है तो मरने दो, स्वयं तो विष खाकर मत मरो। श्रेष्ठ पुरुष इस सिद्धान्तसे विचलित होते ही नहीं।

सत्संगकी एक और बात सुनायी जाती है। शिक्षाकी बात कही जाय, उसका विशेष प्रभाव नहीं हो तो शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार नहीं कहना चाहिये, चुप ही रहना चाहिये; किन्तु यह

बात उन पुरुषोंपर लागू पड़ती है, जो महात्मा हैं, क्योंकि उनकी बात काममें आनी ही चाहिये, अन्यथा उनकी आज्ञाकी अवहेलना होती है। सच्चे श्रद्धालुके लिये अपने श्रद्धेयकी आज्ञाका उल्लंघन मृत्युके समान है, किन्तु हम साधारण लोग हैं, भगवान्‌की चर्चा इस उद्देश्यसे करें कि संसारकी चर्चा छोड़कर भगवान्‌के गुण, प्रभावकी आलोचना करें तो आज्ञाकी अवहेलना करनेपर होनेवाली हानि नहीं होती है। दूसरे हमलोग यह भी समझते हैं कि इन बातोंको काममें लानेसे ही लाभ होगा। काममें नहीं लायें तो कहनेवालेका क्या दोष है? सुनने मात्रसे ही कल्याण हो जाय, यह बात नहीं है। काममें लायें तो कल्याण हो सकता है। नहीं काममें लाते हैं तो वक्ताका क्या दोष है?

मैं यदि कोई वस्तु प्रसादके रूपमें बाँटूँ और उससे मुक्ति नहीं हो तो आपके यही भाव होगा कि जैसे मन्दिरका प्रसाद, वैसे ही यह प्रसाद। इस तरहसे इसका मनपर बुरा प्रभाव पड़ता है। मैं अच्छा पुरुष नहीं भी होऊँ तो भी मुझे अच्छे पुरुषकी जगह बैठकर यह गुंजाइश क्यों देनी चाहिये? मैं विनय करता हूँ कि मेरी बातोंको आप काममें लायें तो आपके लाभकी बात है, मैं काममें लाऊँ तो मेरे लाभ है। ऐसी बात हो तो वक्तापर दोष नहीं आता।

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाके स्थानसे बचना चाहिये। वक्ताका स्थान मान, बड़ाईका है, इससे बचना चाहिये। भीतरसे भी यह न समझे कि मैं वक्ता हूँ। यह बता दें कि ये भगवान्‌के वचन हैं। इनका आप पालन करेंगे तो आपका कल्याण है, मैं पालन करूँगा तो मेरा कल्याण है। और नीचे उतरे तो सलाहके रूपमें कहे, शिक्षा और उपदेशके रूपमें नहीं कहे, आचार्यका रूप नहीं

दे। इससे सुननेवालेका भी बचाव हो गया और वक्ताका भी बचाव हो गया। सुननेवालेका बचाव है कि वे काममें नहीं लावें तो उनका पतन नहीं है।

मान और बड़ाईको स्वीकार करना शरीरको महत्त्व देना है। यह बड़े खतरेकी चीज है, इसलिये अच्छे पुरुषोंको इससे बचना चाहिये, जो उनके अनुयायी हैं, उन्हें बचाना चाहिये।

मैं अभी यह नहीं कह सकता कि मुझे बचानेकी आवश्यकता नहीं है या मुझे परमात्माकी प्राप्ति हो गयी है। मैं तो यही कहता हूँ कि आप भी बचें, मुझे भी बचायें।

इस विषयमें पूर्वमें जो महात्मा हो गये हैं, उनके अनुयाइयोंने जो किया है, उसकी ओर हमें नहीं देखना है। वे वैसा क्यों कर गये, वे जानें।

जिन्हें कल्याण करनेकी इच्छा हो, उन्हें मान-बड़ाईसे बचना चाहिये। जो उनके प्रेमी हों, उन्हें बचाना चाहिये। मेरे कहनेमें कोई भूल हो तो आपको हाँमें हाँ नहीं करनी चाहिये, मुझे समझाना चाहिये ताकि मैं सुधार कर सकूँ। जो यह समझता है कि मुझमें श्रद्धा करनेसे मुझे तो कोई हानि नहीं है और श्रद्धा करनेवालेको लाभ है—यह बड़े अंधकारकी बात है। यदि मैं यह समझता हूँ तो मैं महा-तमा ठहरा। इस तरहकी मैं मेरे मनमें कल्पना करूँ तो समझना चाहिये कि मेरेमें बड़ा अन्धकार है। यह बात बहुत विचारके द्वारा आजमाइश की हुई है, बड़े खतरेकी चीज है।

आप पूछें कि क्या आपने यह कल्पना करके देखी है कि लोग मुझमें श्रद्धा करें?

हाँ, मैंने दूसरेपर भी करके देखी है, अपनेपर भी देखी है।

बड़ा भयंकर परिणाम हुआ।

जब यह ऐसी तात्त्विक बात है तो इसका खूब प्रचार करना चाहिये?

ठीक है, किन्तु करे कौन? जो वास्तवमें परमात्माको प्राप्त हो चुके हैं, वे भले ही करें, दूसरा कौन कर सकता है? उच्चकोटिका साधक भी नहीं कर सकता। करे तो उससे उलटा प्रचार भले ही हो। मैं जो यह कह रहा हूँ, इससे उलटा प्रचार भले ही हो।

आपने कहा कि अपने ऊपर भी प्रयोग करके देखा क्या?

प्रयोग किया था। जो यह कहा कि ऐसा साधन करके देख लें, मेरी गारन्टी है, इस तरहके प्रयोगसे हानि हुई।

भगवान् बड़ी रक्षा करते हैं। इस तरहका करार किया तो पार नहीं पड़ा। किसी जगह भगवान्‌ने चेता दिया।

जो यह बात कही जाती है कि शास्त्रकी बात है, उसे काममें लाओ तो कल्याण होनेमें कोई सन्देह नहीं है, वह शास्त्रकी बात है। मैं काममें लाऊँ तो मेरा कल्याण है, आप काममें लायें तो आपका कल्याण है। इस प्रकार कहनेमें मैं भी शामिल रहता हूँ, यदि मैं यह कहूँ कि यह मेरी बात है तो उसका तात्पर्य यह हुआ कि मेरा कल्याण हो चुका है।

भगवान्‌का वचन यदि झूठा हो जाय तो मेरा झूठा हो—इस प्रकारसे जो गुंजाइश दी जाती है, वह भगवान्‌के वचनोंके आधारपर दी जाती है। वह काममें लानेकी आपको और हमें चेष्टा करनी चाहिये।

आप कहते हैं कि श्रद्धाके योग्य तो एक परमात्मा ही हैं, किन्तु आपसमें खूब प्रेम करना चाहिये। आप कहें कि प्रेमके

लिये तो गुंजाइश देते ही हैं?

ठीक है, इसमें आपत्ति नहीं है। परमात्माको लेकर आप मेरेसे, मैं आपसे प्रेम करूँ तो दोनोंके लाभ है।

परमात्माके लिये प्रेम किया जाय तो कोई भी करे, लाभकी चीज है। गोपियाँ आपसमें प्रेम करती थीं। हम भी इसी तरह आपसमें प्रेम रखें तो दोनोंके लाभकी बात है। आप यदि आपसमें लड़ते हैं तो दोनोंके हानि है, आपसमें प्रेम करते हैं तो लाभ है। वह चाहे साधक हो, चाहे सिद्ध। जो साधक हैं और एक-दूसरेसे प्रेम रखते हैं, वे लाभ उठाते हैं।

श्रद्धा जो बड़ा हो या जो पूजनीय हो, उसमें ही हुआ करती है। एक-दूसरेमें नहीं होती। प्रेम बराबर वालोंमें होता है। वहाँ कोई छोटा-बड़ा नहीं है। एक-दूसरेसे परस्परमें प्रेम करना—इसकी बड़ी आवश्यकता है। खूब उत्तरोत्तर प्रेम करना चाहिये। वास्तविक प्रेम अधिक लाभकी चीज है।

इस समय दिखाऊ प्रेम बढ़ रहा है, वास्तविक प्रेम नहीं। दिखाऊ प्रेम भी हानिसे तो बचानेवाला है। वह उतना ही लाभ करता है कि परस्परमें लड़ाई करके रसातल जानेसे रोकता है, किन्तु परमात्मा तक तो असली प्रेम ही पहुँचा सकता है। इसलिये हमें अन्तरंग प्रेम करना चाहिये। उससे स्वतः सुधार होगा।

आपसमें खूब प्रेम बढ़ाना चाहिये। वर्तमानमें जो प्रेम है, पहले इससे अधिक प्रेम था। कम कैसे हुआ? एक-दूसरेका छिद्र देखनेसे। किसीका अवगुण नहीं देखना चाहिये, वह हानिकी चीज है। उससे वैर होगा। उसका परमाणु अपनेमें आयेगा, इसलिये किसीके अवगुणोंकी ओर खयाल करना ही नहीं

चाहिये। एकदम सिद्धान्तकी बात है। दूसरेके दुर्गुणोंका चिन्तन करेंगे तो वे दुर्गुण अपनेमें आयेंगे। दूसरेके गुणोंका चिन्तन करेंगे तो गुण आयेंगे।

एक दूसरेके साथ द्वेष होगा तो कटकर मरेंगे। कौरव, पाण्डव कटकर मर गये, क्योंकि उनका एक-दूसरेके साथ वैर था। यदि एक-दूसरेके साथ प्रेम करें तो दोनोंके लाभ होता है। एक-दूसरेका हित करना चाहें तो थोड़ेसे ही काम हो जाता है। लड़ाई करना चाहें तो सेना लेकर जाना पड़े। प्रेम करनेमें सरलता है, लड़ाई करनेमें कठिनता है। लड़ाई करनेमें हानि-ही-हानि है, फिर भी लड़ते हैं, यह मूर्खता है। परस्पर प्रेम बहुत उच्चकोटिकी चीज है। वह प्रेम यदि परमात्माकी प्राप्तिके लिये हो तो बात ही क्या है! एक-दूसरेको देखकर प्रतिस्पर्धा करें। जितनी बातें कहते हैं, आजमाइश की हुई हैं। मेरी साठ वर्षकी आयु हो गयी।

लोभके त्यागके मुकाबले कामका त्याग कठिन है। कामके त्यागसे भी मानका त्याग कठिन है। मानसे भी बड़ाईका त्याग कठिन है। बड़ाईका भी त्याग ईर्ष्याके लिये कर दिया जाता है। अपनी भी मान-प्रतिष्ठा है, दूसरेकी भी मान-प्रतिष्ठा है तो जलता है कि इसकी क्यों है? उसको मिटानेकी चेष्टा करता है।

दोष देखनेका स्वभाव है, इस कारण आपसमें प्रेम नहीं है। इन छिद्रोंको सीमेन्टसे बन्द कर दो। सीमेन्ट है उसका गुण-गान करे और सेवा करे। ये दो चीजें परस्पर प्रेम बढ़ानेवाली हैं।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

सर्वत्र भगवान्‌को ही देखें

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता हूँ और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता है, क्योंकि वह मेरेमें एकीभावसे स्थित है।

ज्ञानमार्गसे—बादलमें आकाश और आकाशमें बादलकी तरह।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥

(गीता १०। ४२)

हे अर्जुन! इस बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है, मैं इस सम्पूर्ण जगत्‌को अपनी योगशक्तिके एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ, इसलिये मेरेको ही तत्त्वसे जानना चाहिये।

भक्तिमार्गसे—सर्वत्र सगुण रूपसे अपने इष्टदेवको देखे कि जहाँ नेत्र जाते हैं, जहाँ दृष्टि पड़ती है, पत्ते-पत्तेमें सर्वत्र भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं। गोपियोंकी नेत्रोंकी पुतलीमें भगवान् हैं। हरे रंगके चश्मेकी बात—चश्मेसे तो ऊपर, नीचे देखनेपर दूसरा रंग भी दीख सकता है, पर नेत्रोंकी पुतलीमें बसानेपर दूसरा नहीं दीखता। यह नेत्रकी बात हुई। इसी प्रकार मनमें भगवान्‌को

प्रवचन दिनांक—१-१२-१९४५, प्रातः ७.४५ बजे, राजासाहबका निवास स्थान, गोरखपुर।

बसा लेनेपर सर्वत्र वे ही दीखते हैं। इसी प्रकार भगवान्‌में सब देखना, जैसे यशोदा मैयाने भगवान्‌में सब कुछ देखा था, अर्जुनने देखा था।

तीसरी बात—भक्ति-मिश्रित ज्ञानका प्रकरण। रास्तेमें एक वृक्ष दीखा, भगवान् स्वयं ही लीला करनेके लिये वृक्षका रूप धारण किये हुए हैं। वाह प्रभु! वृक्ष साक्षात् भगवान्‌का रूप दीख रहा है, वह लिपट जाता है। गाय दिखती है—प्रभु! आप गायका रूप धारण करके लीला कर रहे हैं! देख-देखकर मुग्ध होता रहता है। सर्वत्र भगवान्‌को ही देख रहा है। एक भगवान् अनेक रूपोंमें लीला कर रहे हैं! सबको भगवान्‌में देखना, जो कुछ है, सब भगवान् हैं—यह ज्ञान-मिश्रित भक्ति है।

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

(रा० च० मा०, किष्किन्धाकाण्ड, दोहा ३)

सब कुछ भगवान्‌के स्वरूपकी राशि है, सबमें भगवान् देखता है। ज्ञानवान् सबको भगवान् देखता है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७। १९)

बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त हुआ ज्ञानी सब कुछ वासुदेव ही है अर्थात् वासुदेवके सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं, इस प्रकार मेरेको भजता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है।

भक्ति मिश्रित ज्ञान—सबको भगवान् समझना।

दूसरी बात—ज्ञान मिश्रित भक्ति—सबमें भगवान्‌को देखना जहाँ मन गया—भगवान्। जहाँ दृष्टि गयी—भगवान्। इस प्रकार

अभ्यास करते-करते भगवान्‌का यह तत्त्व-रहस्य समझमें आ जाता है और संसारका स्वरूप बदल जाता है। अनेक रूपोंमें पदार्थ दिखनेपर भी भाव बदल जाता है। भाव बदलनेपर क्षणभरमें जमीन-आसमानका अंतर हो जाता है। निराले ढंगकी बात है। अनुभवमें आनेसे ही समझमें आती है।

एक जिज्ञासु एक महात्माके पास गया, उसी महात्माको वह खोज रहा था, पर उसने पहचाना नहीं। उन्हींसे पूछता है कि अमुक महात्मा कहाँ हैं? महात्मा मौन हो जाते हैं। जिज्ञासुको कुछ सन्देह हो जाता है कि क्या यही हैं? थोड़ी देरमें जब पता चल जाता है कि ठीक वे ही हैं तो उस जिज्ञासुके पहलेके भावमें और अबके भावमें बड़ा अन्तर हो जाता है। पहचान लेनेपर इतना आनन्द होता है कि क्या कहा जाय! सर्वत्र भगवद्-बुद्धि हो जानेपर जब हमलोग वास्तवमें भगवान्‌को पहचान लेते हैं, तब हमारी स्थिति बड़ी विलक्षण हो जाती है।

काम, क्रोध, लोभ, मोहको हटानेकी चेष्टा करनेकी अपेक्षा भगवान्‌के भजनकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। सूर्योदय होनेसे अन्धकार अपने-आप नष्ट हो जायगा। अन्धकारके नाशके लिये अन्य उपाय करनेकी अपेक्षा सूर्योदयके लिये प्रयास करना ही श्रेष्ठ है।

गोस्वामी तुलसीदासजी-सरीखा लाखों मनुष्योंमें कोई एक ही निकल सकता है। उनकी कवितामें इतनी अद्‌भुत आकर्षण-शक्ति भरी हुई है कि हमारे ऋषियोंके ग्रन्थोंसे भी आगे चले गये हैं। रामचरितमानस और विनय-पत्रिकाकी जितनी प्रशंसा की जाय, उतनी ही थोड़ी है।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

भगवान् कैसे मिलें—यह लालसा बढ़ायें

भगवत्प्राप्तिका सबसे बढ़कर साधन यही है कि भगवत्प्राप्ति कैसे हो—यह जिज्ञासा, यह इच्छा जाग्रत् रहनी चाहिये। भगवान् कैसे मिलें—यह तीव्र इच्छा हर समय जाग्रत् रहनी चाहिये। भगवत्प्राप्तिका उपाय इस तीव्र इच्छासे अपने-आप मिल जायगा। बिना भगवान्‌के मिले काम नहीं चलता, कहीं भी शान्ति नहीं मिलती, इसलिये भगवान्‌की आवश्यकता है। भगवान्‌के बिना दूसरी चीजसे काम नहीं चलता है। संसारके पदार्थ बहुत समयसे हमारे पास रहे हैं, ये उलटे बाधक हैं। भगवत्प्राप्तिकी तीव्र लालसा होनी चाहिये। असली लगन इस प्रकारकी होनी चाहिये—

लगन लगन सब कोइ कहै लगन कहावै सोय।
नारायण जा लगन में तन मन दीजै खोय॥

जब यह बात समझमें आ जाती है कि भगवान्‌के समान कोई चीज नहीं है तब उनको पानेकी तीव्र लालसा जाग्रत् हो उठती है। रुपये तीव्र इच्छा होनेपर भी नहीं मिलते, क्योंकि रुपये जड़ हैं। आपमें तो उनको पानेकी इच्छा है, परन्तु रुपयोंमें आपको पानेकी इच्छा नहीं है। भगवान् कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें

प्रवचन दिनांक—मार्गशीर्ष कृष्ण १५, संवत् २००२, सन् १९४५

युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

बिना तार टूटे नित्य-निरन्तर भजन करनेवालेको भगवान् सुलभ हैं, विलम्बका काम नहीं। भीतरकी लालसासे ही ऐसी स्मृति होती है, रुचि तीव्र होनी चाहिये। रुचिसे लालसा, उससे लगन और लगनसे भगवत्प्राप्ति हो जाती है। कोई भी मिले, उससे पूछे कि भगवान् कैसे मिलें? जबतक न मिलें, तबतक यह लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाय।

एक भक्त थे, उनका यही हाल था, हर बादलको देखकर चातककी तरह पुकारना। कैसे मिलें, यही लगन लगी रहती थी। एक साधुने कहा—भगवान्से मिलना हो तो ग्रीष्मकालमें पंचाग्नि तपो। उसने शुरू कर दिया।

दूसरा साधु मिला, उससे फिर प्रश्न किया—भगवान् कैसे मिलें? उसने कहा—उपवास करो। वह उपवास भी करने लगा।

एक तीसरे साधुने कहा—नाम-जप किया करो। वह यह काम भी करने लगा।

चौथेने कहा—जपके बाद ध्यान भी करना चाहिये। वह बोला—ध्यान नहीं होता। तब साधुने कहा—प्राणायामसे ध्यान होता है। उसने प्राणायाम भी शुरू कर दिया।

एक और सज्जन मिले, उन्होंने कहा—इतना सब करते हो, भगवान् नहीं मिलेंगे तो क्या करोगे?

वह बोला—जीवन भर खोज करता रहूँगा। कहीं-न-कहीं और कभी-न-कभी तो अवश्य मिलेंगे। बस, उसी सज्जनमेंसे भगवान् प्रकट हो गये। वे भगवान् ही थे, परीक्षा करने आये थे।

हमलोगोंको भी यह जोरदार निश्चय रखना चाहिये। भगवान्से

मिलनेकी वास्तविक इच्छा होगी तो निराशा कभी नहीं होगी। जो भगवान्‌के भरोसेपर रहता है, उनपर निर्भर रहता है, उसे भगवान् अवश्य मिलते हैं। विलम्ब तो हमारी कमीकी पूर्तिके लिये करते हैं। हमारी लालसाको और भी तीव्र करनेके लिये ही भगवान् हमें तरसाते रहते हैं।

हमें अपनी लालसाको हर समय बढ़ाते रहनेके लिये सत्संग, सत्पुरुषोंका संग करते रहना चाहिये। लालसाका वृक्ष कभी नष्ट नहीं होता, उस वृक्षकी रक्षा भगवान् करते हैं। देखनेमें न भी आये तो भी विश्वास करना चाहिये।

भजन-ध्यान भी स्थायी पूँजी है। भगवान् कहते हैं—**न मे भक्तः प्रणश्यति** (गीता ९। ३१); **योगक्षेमं वहाम्यहम्** (गीता ९। २२)।

जब भगवान् रक्षा करते हैं, तब किसकी सामर्थ्य है, जो उनके भक्तकी पूँजीका नाश कर सके।

भगवान्‌की ओर देखकर यह विश्वास करे कि वे अवश्य मिलेंगे। भरतकी तरह निश्चय रखे—प्रभो! आपकी ओर देखकर मुझे विश्वास होता है कि आप मुझे अवश्य मिलेंगे—

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥

(रा० च० मा०, ७। १। ६)

भगवान् अगर विलम्ब करते हैं तो हमारे हितके लिये ही करते हैं। हमें घबराना नहीं चाहिये, लालसा बढ़ाते ही रहना चाहिये।

सफलता कैसे मिले?

भगवान्‌की और महापुरुषोंकी कृपासे।

वह कृपा कैसे प्राप्त हो?

वह तो प्राप्त ही है, हमलोग मानते नहीं। इसी भूलको हटाना है, यही करना है। उस प्रभुकी और महात्माओंकी तो पूर्ण दया है।

प्रतीति क्यों नहीं होती?

हम उस दयाको मानते नहीं, इसलिये प्रतीति नहीं होती। हम प्रभुकी शरण हो जायँ तो हमपर वह दया चमक उठती है, जैसे—शीशेकी धूल हटा दी जाय तो सूर्यका प्रकाश उसपर चमकने लग जाता है।

माननेसे भी दया प्रतीत होने लगती है। एकान्तमें बैठकर गद्‌गद भावसे भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये। दिल खोलकर रोना चाहिये। ऐसा न बने तो वचनमात्रसे ही प्रार्थना करो—'**हे नाथ! हे गोविन्द! हे वासुदेव! हे हरि! त्राहि माम्! त्राहि माम्!**'

बिना भावके भी प्रार्थना करनेसे आगे जाकर भाव बनने लगेगा।

हमारी अज्ञता, संशय, सारे दोष प्रार्थनासे हट जायँगे। श्रद्धाकी आवश्यकता है। श्रद्धा भी प्रार्थनासे मिल जाती है।

जबतक तीव्र इच्छा न हो, तब तक सत्संग करते ही रहो। सत्संग न मिले तो सत्पुरुषोंके वचनोंका मनन, विचार करना चाहिये। सत्संगकी लालसा होगी तो महापुरुष संसारमें हैं ही। भगवान् उन्हें भिजवा देंगे या स्वयं महापुरुष बनकर आ जायँगे, लालसा होनी चाहिये।

भगवान्‌से जो मिलना चाहता हो, उसे भगवान् न मिलें, यह युक्तिविरुद्ध बात है। हमारेमें चाह होनेसे भगवान्‌में चाह उत्पन्न होती है और उनकी चाहको कौन रोक सकता है? इसमें विद्या, बुद्धि, धन—किसी चीजकी आवश्यकता नहीं है, केवल चाहकी आवश्यकता है।

भगवान् हमारे हितके लिये ही विलम्ब करते हैं। अधिक उत्कट इच्छा होनेपर मिलनेमें अधिक आनन्द होता है, जैसे भूखेको भोजन और प्यासेको जल मिलनेपर उन्हें अधिक आनन्द होता है। जो भगवान्पर बेड़ा डाल देता है कि हमें भगवान्से ही मिलना है, चाहे वे आजीवन न मिलें, हमको और दूसरा काम करना ही क्या है? उनकी जब इच्छा हो, तब मिलें, हमें तो बस, भजन-ध्यान करते ही रहना है।

एक साधुकी बात—नारदजीके हाथ भगवान्को सन्देश भेजा, पूछा—मुझे भगवान् कब मिलेंगे?

भगवान्ने कहा—वह जैसा भजन-ध्यान करता है, वैसा करते रहनेपर उस पीपलके पेड़के जितने पत्ते हैं, उतने वर्षोंतक करनेपर मिलेंगे। नारदजीने जाकर उससे कह दिया।

वह साधु इस बातको सुनकर गद्गद हो गया—मुझको, मेरे-जैसेको भगवान् मिलेंगे! मिलेंगे! मिलेंगे! मिलेंगे! कहते-कहते नाचने लगा। बस, उसी क्षण भगवान् वहाँ प्रकट हो गये। नारदजी बोले—भगवन्! आप आ गये!

भगवान् बोले—इसका हाल तो देखो! यह इस प्रकारकी बात सुनकर भी निराश नहीं हुआ, उलटा प्रेममें मग्न हो गया। शर्त छूट गयी, चाहे जब मिलें, मिलेंगे तो सही, बस, आनन्दके मारे विभोर हो गया। अब मैं कैसे देर करता?

वही बात—कि लालसा बढ़ायें। आपका प्रश्न ही उत्तर है। भगवान् कैसे मिलें?—यही करते रहो।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण...

भगवत्प्रेमकी महिमा

मैं ईश्वरके स्वरूपको मायाकी उपाधि सहित नहीं मानता। ईश्वरके गुण लोगोंका उद्धार करनेवाले हैं। जीवन्मुक्तमें माया नहीं होती। ईश्वरमें यदि माया हो, तब बेचारा ईश्वर जीवन्मुक्तसे भी गया बीता हो गया।

ईश्वरमें ही यदि माया हो तो वह अवतार लेकर हमारी माया कैसे मिटा सकता है। हमारा ईश्वर मायावाला नहीं है, गुणोंवाला है। हमारे कृष्णमें चोरी, झूठ, कपटका व्यवहार नहीं है, हमारा कृष्ण अलौकिक है, पूर्ण ब्रह्म है, साक्षात् ब्रह्म है, विशुद्ध है, पवित्र है। भगवान् कहते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७। १४)

यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परंतु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस मायाको उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।

ज्ञानाग्नि सारे पापोंको, सारे कर्मोंको भस्म कर देती है। यदि कोई संसारके सभी पापियोंसे भी बढ़कर है, वह भी भगवान्‌की कृपासे, उनकी भक्तिके प्रभावसे परम शान्तिको प्राप्त हो सकता है। अतिशय दुराचारी होनेपर भी मोक्षकी प्राप्ति कर सकता है।

भगवान्‌ने भीलनीका आतिथ्य स्वीकार किया और विदुरके घर जाकर शाकका भोग लगाया। यह सब प्रेम और भक्तिकी महिमा है। जब श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी ओरसे कौरवोंकी सभामें संधिका प्रस्ताव लेकर जाने लगे, बीचमें ही द्रौपदीने टोका। महाराज! आप उन दुष्ट पापियोंसे संधि करने जा रहे हैं, जिन्होंने

प्रवचन दिनांक—४-५-१९४१, दोपहर, स्वर्गाश्रम।

मेरा अपमान किया, मेरे केश खींचे, मुझे यातना दी, क्या उनसे संधि करना उचित है? मेरे केश आज भी खुले हुए हैं। जबतक दुष्ट दुशासन मारा नहीं जायगा, तबतक मेरा प्रण है कि यह खुले रहेंगे, मैं जूड़ा नहीं बाँधूगी। द्रौपदीके पीड़ा भरे वचन सुनकर श्रीकृष्णने उसे आश्वासन दिया कि उन पापियोंका नाश होगा। कृष्णे! तुम चिन्ता क्यों करती हो, तुम्हारा प्रण पूरा होगा, यह मेरा प्रण है। उनसे संधि होना सम्भव ही नहीं। प्रभु भक्तके प्रेमके वशीभूत होकर उसके अधीन हो जाते हैं।

भगवान् जब कौरव-सभामें गये, दुर्योधनने उनके स्वागतका बड़ा प्रबन्ध किया। उनके भोजनके लिये नाना प्रकारके खाद्य-पदार्थ और मेवा-मिष्टान्नकी व्यवस्था की। हर-एक सुख-सुविधाका प्रबन्ध किया, अतिशय सम्मान किया, किन्तु भगवान्ने उन पदार्थोंकी ओर दृष्टि भी नहीं डाली। वहाँ प्रेम नहीं था, दैन्य नहीं था, अपितु अभिमानकी गन्ध थी, दिखलावा था। भगवान्ने वहाँसे तुरन्त चले जाना ठीक समझा। उन्होंने सब अस्वीकार कर दिया। जब वे जाने लगे तो दुर्योधनने इसका कारण पूछा। भगवान्ने कहा—जिस कार्यके लिये मैं आया हूँ, वह पहले कीजिये, पाण्डवोंसे समझौता कीजिये। दुर्योधनने इन्कार किया तो भगवान्ने सब अस्वीकार किया। दुर्योधनने कहा—अतिथिका सत्कार करना ही चाहिये, इसी दृष्टिसे हम आपका सत्कार करते हैं। भगवान्ने कहा—यह सत्कार नहीं है, सेवा नहीं है। सेवा वहीं स्वीकार की जाती है, जहाँ प्रेम होता है या जहाँ संकटमय स्थिति होती है। न तुममें प्रेम है और न मुझपर संकट है। अतः मेरे लिये यह सभी सामग्री त्याज्य है। भगवान् भक्त विदुरके यहाँ चले गये, वहाँ उनकी पत्नीके हाथसे शाकका भोग लगाया। वहाँ

प्रेम-ही-प्रेम था। विदुर भक्त थे, शुद्ध अन्तःकरण वाले थे। उनकी पत्नी भी प्रेममयी थी। भगवान् वहाँ बिना बुलाये गये। स्वयं भोजन माँगा। प्रेमवश होकर विदुर पत्नीने केलेके छिलके खिलाये। भगवान् प्रेमके दास हैं। जो कोई प्रेमसे पत्र-पुष्प अर्पण करता है, भगवान् उसे स्वीकार करते हैं। भगवान्ने कहा है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

यही कारण है भगवान् राजा दुर्योधनके मेवा-मिष्टान्न और सुन्दर-सुन्दर पदार्थोंको त्यागकर प्रेममूर्ति विदुरके यहाँ बिना बुलाये गये। वहाँ प्रेम था, भक्ति थी। यहाँ अभिमान था, दम्भ था, पाखण्ड था। यह प्रेमकी महिमा है। शबरीके बेर भी उसके सरल प्रेमके कारण स्वीकार किये। व्रजकी गोपियोंके प्रेमके बारेमें क्या कहा जाय, वह तो कृष्णमय थीं। उनकी-सी तन्मयता सबमें कहाँ मिलती। वह हर समय कृष्णको ही देखा करती थीं। उठते-बैठते, झाड़ू देते समय, पालना झुलाते समय, दही बिलोते समय, हर समय श्यामको ही देखती थीं। भगवान् भी उनके प्रेमके अधीन थे। उनके यहाँ भगवान् माखन चुराते थे, उनके साथ रास करते थे। हमें भी हर बातमें प्रेमको स्थान देना चाहिये, अतिथि-सत्कार हमें नारायणका भाव रखकर करना चाहिये। '**मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। अतिथिदेवो भव।**' अतिथिकी सेवा करे तो ऐसा समझे कि

हम नारायणकी ही सेवा कर रहे हैं, हमारे अहोभाग्य हैं। शरीरसे सेवा और वाणीसे उनके नाम और गुणका कीर्तन करे। इस प्रकार **मनसा वाचा कर्मणा** तीनोंसे प्रभुकी पूजा करें। याद करनेसे भगवान् प्रसन्न होते हैं। यह बात कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि हमें यह सब करनेका अवकाश नहीं है। अवकाशकी क्या बात है। यदि हमारे हृदयमें प्रेम है, भक्ति स्वयं आयेगी, साधन स्वतः ही बनेगा। रावण, कंस, मारीच आदि भगवान् रामसे डरते थे। उन्हें हर समय राम और कृष्ण ही दिखलायी देते थे। भयसे उनकी ही याद बनी रहती थी। मारीच 'र' अक्षरसे काँप उठता था, 'राज' 'रथ' आदिसे उसे रामकी याद आ जाती थी और भयातुर हो जाता था। कंस कृष्णसे डरता था, कृष्णको ही हर समय देखता था, उनके नाशकी बात सोचता था। जब भगवान्‌से शत्रुता रखनेसे या भय रखनेसे उनकी याद हर समय बनी रहती है और हृदयसे निकालनेपर भी नहीं निकलती, तब भगवान्‌से प्रेम किया जाय तो क्या वह हमें सदैव याद नहीं रहेंगे? हमें दिखायी नहीं देंगे? अवश्य दिखायी देंगे। प्रेमसे भगवान् अवश्य आते ही हैं। गोपियोंने भगवान्‌से प्रेम ही किया था, उनका वह प्रेम अनुपम था, वास्तविक था। गोपाङ्गनाएँ उठते-बैठते, चलते-फिरते, खाते-पीते, हर समय कृष्णको याद रखती थीं, उनसे प्रेम करती थीं। भगवान् भी उनके प्रेममें मत्त होकर उनके साथ क्रीड़ा करते थे। यह है प्रेमका महत्त्व, प्रेम बड़ी चीज है, प्रेमसे प्रभु अपने हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं। हमें प्रभुको अपना बनानेके लिये या उनका बननेके लिये हृदयमें नित्य-निरन्तर प्रेमभाव उदित करना चाहिये। इसीमें हमारा कल्याण है।

नारायण नारायण नारायण